अध्याय 8

महिला एवं बाल श्रम के विविध आयाम, राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना

राजस्थान में बालिका शिक्षा, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण

महिला और बालक-बालिकाएँ किसी भी देश और समाज के सबसे महत्वपूर्ण परन्तु संवेदनशील वर्ग है। उनकी उन्नति से ही वैश्विक स्तर पर किसी देश को विकसित या विकासशील की संज्ञा प्राप्त होती है। भारत बीते दशकों में महिला एवं बाल विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिला एवं बच्चों की स्थिति एवं उनसे संबंधित विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं को जाने-समझे।

विद्यार्थियों की सहजता, सरलता एवं विषय के मध्य तारतम्यता बनाये रखने के लिए महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दों को क्रमवार लिया जाएगा। यथा, महिलाओं की प्रस्थिति, राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना तथा राजस्थान में बालिका शिक्षा। उसके पश्चात् बाल श्रम के विविध आयाम, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी।

विषय की बोधगम्यता को बनाए रखने के लिए निम्नांकित बिन्दुओं पर क्रमवार जानकारी दी जाएगी-

- महिलाओं की प्रस्थिति के सम्बन्ध में विवरणात्मक व्याख्या।
- राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना
- राजस्थान में बालिका शिक्षा
- बालश्रम के विविध आयाम
- बालश्रम की समस्या एवं निराकरण

प्रस्तुत अध्याय में आप जान पाएँगे कि भारत में महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति क्या है? बच्चों के संदर्भ में हमारे अध्ययन का पूर्ण केन्द्रबिन्दु बालश्रम की समस्या है।

- हमें महिलाओं की प्रस्थिति को जानने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना होगा उसके पश्चात् ही वर्तमान प्रस्थिति का विश्लेषण करना उचित एवं सारगर्भित होगा।
- हम भारत में महिलाओं की प्रस्थिति को जानने के पश्चात् राजस्थान में महिलाओं की स्थिति की चर्चा करेंगे एवं विभिन्न संवैधानिक एवं वैधानिक संरक्षण के फलस्वरूप, उनकी अपने अधिकारों के प्रति चेतना की बात करेंगे।
- शिक्षा जनजागरण का प्रथम शस्त्र है, यह जानते हुए राजस्थान में बालिका शिक्षा की बात की जाएगी।
- बाल श्रम के विविध आयाम की चर्चा करते हुए बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी।

भारत में महिलाओं की प्रस्थिति

भारतीय स्त्री की प्रस्थिति का विश्लेषण करने के लिए हमें सभी कालखंडों में उसके अपूर्व वैभव, समाज की संरचना एवं विन्यास को जानना होगा। जिस तरह से समाज में परिवर्तन हुआ, उसी तरह स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में नारी की मानप्रतिष्ठा को पुरुषों के समानांतर ही स्वीकार किया गया था। उन्हें सम्पत्ति, ज्ञान एवं शक्ति की स्वामिनी माना गया था। भारत के दीर्घकालीन इतिहास के पन्नों को यदि पलट कर देखा जाये तो सर्वप्रथम 'वैदिक काल' का पृष्ठ दृष्टिगोचर होता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण– वैदिककालीन संस्कृति स्त्रियों की उत्कृष्ट स्थिति की ओर संकेत करती है। वेदयुगीन स्त्रियाँ न केवल वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करती थीं, अपितु साथ ही साथ यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थीं। वैदिक युग में बाल विवाह पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों से नारी का जीवन दूर था। सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार ही नहीं बल्कि जीवनसाथी के चुनाव एवं उससे विच्छेद के सम्बन्ध में भी इस कालखंड की स्त्रियों को स्वतंत्रता प्राप्त थी।

ऋग्वेद के मतानुसार 'नारी ही घर है।' अथर्ववेद में कहा गया कि ''नववधु, तू जिस घर में जा रही है वहाँ की तू साम्राज्ञी है। तेरे ससुर, सास, देवर व अन्य तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हैं।''

धार्मिक संस्कारों का निर्वाह पत्नी के बिना अपूर्ण माना जाता था। जैमिनी की 'पूर्व मीमांसा' में वर्णित है कि उच्चतम धार्मिक संस्कारों में स्त्री-पुरुष की भागीदारी बराबर की होती थी।

उत्तर वैदिक काल जो सामान्यत: ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसास`3 00व र्षब ादत कम ानाज ाताह ै,म हिलाओंक ेस ामाजिक प्रस्थिति हर दृष्टि से सम्मानीय थी। भारतीय महिलाओं की स्थिति

महाकाव्य युगीन समाज में भी सम्माननीय थी। महाभारत कालीन परिवार पितृसत्तात्मक था, परन्तु 'वीरप्रसु' एवं 'जननी' होने के कारण माता का स्थान आदरणीय माना जाता था। भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन का प्रथम चिन्ह धर्मशास्त्र काल में देखने को मिलता है। धर्मशास्त्र काल का प्रारम्भ तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का माना जाता है। इस काल में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया। 'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षानि योवेन। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्रययर्हयि' अर्थात स्त्री जीवन के किसी भी पड़ाव पर स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। बाल्यपन में वह पिता के अधिकार में, युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था पुत्र के नियंत्रण में रहे। मनुस्मृति में यह भी उल्लेखित किया गया है कि विवाह का विधान ही महिलाओं का उपनयन है, पति की सेवा ही गुरुकाल का वास है और घर का काम ही अग्नि की सेवा है।

स्त्रियों की इस काल की प्रस्थिति के संदर्भ में इ. डब्ल्यू हाफकिंस ने अपनी पुस्तक, 'रिलिजन ऑफ इंडिया' में लिखा है कि 'एक स्त्री का पति सर्वरूप से निर्गुण होते हुए भी पूज्य देवता के रूप में मान्य है वही एक मात्र केन्द्र है, जिसके चिन्तन में एक स्त्री अपने को नियोजित करती है, वही उसके जीवन का ताना-बाना है, सर्वरूप है।' पौराणिक काल के पश्चात् बौद्धकाल का वह समय भी भारतीय इतिहास में अंकित है, जिसे स्त्रियों की प्रस्थिति के संदर्भ में विवेचित करना आवश्यक हो जाता है। इस काल में स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। वे सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेती थी, धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों को स्पष्ट रूप से उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। उनका अपना संघ बना, जिसे भिक्षुणी संघ कहा गया। इस संघ के भी वही नियम निर्देश थे जो 'भिक्षुओं' के थे। बौद्ध काल का समय अपना स्थायित्व कायम नहीं रख पाया।

धर्मशास्त्र काल से स्त्रियों की स्थिति में जो गिरावट आयी वह मध्यकाल में और विकट हो गयी। मध्यकाल जिसे 16वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है, स्त्रियों के सर्वस्व अधिकरों के हनन का काल था। सबसे दुखद पहलू यह रहा है कि स्त्रियों से शिक्षा-दीक्षा के अधिकार (उपनयन) पूर्ण रूप से छीन लिये गये। उनके लिए जीवन का एक मात्र उद्देश्य सुनिश्चित कर दिया गया 'सेवा-कार्य'। इस काल में रक्त की पवित्रता की संकीर्ण धारणा ने इतना जोर पकड़ा कि अल्प आयु (4 से 6वर्ष) में ही विवाह होने लगे। यह स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति पर सबसे गहरी चोट थी। जिस देश में स्त्रियाँ शक्ति, लज्जा एवं संस्कृति की प्रतीक बनी थी, उन्हीं का समूचा अस्तित्व खतरे में आ गया।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्त्रियों की उच्च प्रस्थिति के अवसान के इस काल में, रामानुजाचार्य ने प्रथम भक्ति आंदोलन का शंखनाद किया, जिसने भारत की स्त्रियों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन में उत्थान का सूत्रपात किया। नानक, मीरा, चैतन्य, तुलसी, रामदास तथा तुकाराम जैसे संतों ने स्त्रियों के लिए धार्मिक पूजा, अर्चना का सबल पक्ष प्रस्तुत किया। इस आंदोलन ने स्त्रियों की धार्मिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। संतों ने स्त्रियों को धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन व स्वयं को शिक्षित बनाने के लिए प्रेरित किया।

ब्रिटिश काल में महिलाओं की प्रस्थिति

सामान्यत: यह विश्वास किया जाता है कि ब्रिटिश काल में स्त्रियों की प्रस्थिति के सुधारात्मक प्रयासों में ब्रिटिश शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, परन्तु इस काल में भारतीयों द्वारा समय-समय पर समाज सुधार के जो प्रयास किए गए उसमें अंग्रेजी सरकार के द्वारा इन प्रयासों को विशेष एवं व्यावहारिक सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। इस समय तक भारतीय स्त्रियों पर समस्त प्रकार की निर्योग्यताएँ लाद दी गई थीं। आर्थिक निर्योग्यताओं के सम्बन्ध में के. एम. पाणिक्कर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू सोसायटी एट क्रॉस रोड्स' में लिखा है "....पत्नी पति के परिवार का एक अंग हो गई और विधवाओं को मृत तुल्य मान लिया गया।" इन सभी निर्योग्यताओं के विरुद्ध अंततः देश के समाज सुधारकों ने प्रयास किए। 1828में सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना करके सती प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने कहा कि सती के संस्कार का शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। देशी रियासतों में राजाओं के सहयोग से सती प्रथा को लगभग बंद कर दिया गया, परन्तु एक लंबे समय तक इसको वैधानिक स्तर पर अवैध कृत्य घोषित नहीं किया गया, आखिर कर 1829 में कानून ने इस प्रथा को अवैध करार दिया गया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए आंदोलन चलाया और स्त्रियों की शिक्षा के लिए भी वकालत की। विधवा पुर्नविवाह तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए महर्षि कर्वे ने प्रयास किया। उन्होंने 1916 में एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र में स्थापित किया। बड़ौदा साम्राज्य के शासक, सायाजी राव गायकवाड ने भी बाल विवाह व बहुपत्नी विवाह रोकने, स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए हर संभव प्रयास किए।

स्त्री को शारीरिक, मानसिक तथा सर्वांगीण क्षति पहुँचाने का माध्यम 'बाल विवाह' जैसी कुप्रथा रही है। इस कुप्रथा को रोकने के लिए 1929 में बाल विवाह नियन्त्रण अधिनियम (शारदा एक्ट) पारित हुआ। इस कानून के अनुसार कन्या के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष तथा लड़के के 18वर्ष निर्धारित की गई। साहित्यकार एवं स्वतंत्रता सेनानी, सरोजनी नायडू के शब्दों में, "सभी भारतीय और विशेषकर भारतीय नारियां हरिविलास शारदा के प्रति सदैव कृतज्ञ रहेंगी क्योंकि उन्होंने बड़े साहस और परिश्रम से प्रगतिशील समाजसुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।"

उन्नीसवी सदी के समाजसुधारकों के प्रयासों ने भारतीय इतिहास में महिलाओं की प्रस्थिति को उच्च करने के लिए जो प्रयास किए, उसी की परिणति विभिन्न वैधानिक व्यवस्थाएँ थी, जिन्होंने उत्तरोत्तर भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति को परिवर्तित करने में महत्ती भूमिका निभायी-

1. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (संशोधन विधेयक) 1929

2. हिन्दू महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार का अधिनियम, 1937
3. हिन्दू विवाह अयोग्यता निवारण अधिनियम, 1946
4. विशेष विवाह अधिनियम, 1954
5. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955
6. दहेज प्रतिबंध अधिनियम, 1961 तथा मातृत्व लाभ अधिनियम
7. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976

भारतीय स्त्रियों की समानान्तर प्रस्थिति के लिए किए गए प्रयासों को तीन भागों में विभक्त किया गया है-

1. महात्मा गांधी द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन के अन्तर्गत प्रयत्न
2. स्त्री संगठनों द्वारा सुधार कार्य।
3. संवैधानिक व्यवस्थाएँ

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों की स्थिति संबंधी सुधार कार्यों को भी सम्मिलित किया। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् वे ब्रिटिश सरकार को स्त्रियों की स्थिति से संबंधित सुधार के प्रस्ताव प्रतिवर्ष भेजते रहे। महात्मा गांधी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

भारतीय स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति में बदलाव के लिए स्त्री संगठनों द्वारा भी अथक प्रयास किए गए। बंग महिला समाज व महिला थियोसोफिकल सोसायटी यद्यपि स्त्रियों के लिए आधुनिक आदर्शों को स्थापित करने की चेष्टा कर रही थी तथापि उनका कार्यक्षेत्र स्थानीय स्तर तक ही था। राष्ट्रीय स्तर पर भारत महिला परिषद (जो कि 1904 में स्त्रियों की मुक्ति के संघर्ष हेतु प्रारम्भ हुआ), 1910 में स्थापित 'भारत स्त्री महामण्डल', 1917 में एनीबेसेन्ट द्वारा संचालित महिला भारतीय संघ, 1925 में लेडी एबरडन तथा लेडी टाटा द्वारा आरम्भ किया गया 'भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद' तथा 1927 में मार्गरेट कसिन्स तथा अन्य द्वारा 1929 में स्थापित 'ऑल इंडिया वूमेन्स कॉन्फरेन्स'। इन सभी संगठनों का उद्देश्य पर्दा एवं बाल विवाह जैसी बुराइयों का उन्मूलन,हिन्दू अधिनियमों में सुधार, अधिकारों व अवसरों की समानता जैसे मुद्दों को उठाया।

स्वातंत्रयोत्तर काल में स्त्रियाँ

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया। यद्यपि आधुनिक काल में सामाजिक परिवर्तन की नवीन शक्तियों ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया तथापि यह कहना अनुचित होगा कि उनकी स्थिति में सकारात्मक रूप से आमूल-चूल परिवर्तन आ गया। स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय संविधान में महिलाओं को समतुल्य स्थान प्रदान करने हेतु विशेष प्रावधान किये गये। महिलाओं की स्थिति बीते दशकों में बहुत बदली है। यह बदलाव विशेषकर कुछ ऐसे क्षेत्रों में भी हुआ है, जहाँ पुरुषों का वर्चस्व था और अपने प्रयासों से महिलाओं ने इन लक्ष्मण रेखाओं को भी तोड़ा है जो वर्षों से उनके लिए खींची गयी थी।

स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय महिलाओं की प्रस्थितिक ाअ ंकलनक रनेके ि लएउ नकास ामाजिक,अ र्थिकए वं राजनैतिक क्षेत्र में वास्तविक हस्तक्षेप को जानना होगा।

पिछले दशकों में भारत में महिलाओं की प्रस्थिति का विश्लेषण समाज वैज्ञानिकों को अचंभित कर देता है। इसका कारण है एक ओर महिलाएँ घर से काम के लिए बाहर निकली हैं, अपने अधिकारों और कानूनी संरक्षण के प्रति जागृत दिखाई दे रही हैं, विभिन्न मंचों से समय-समय पर अपने विचारों को प्रकट कर रही हैं, वहीं वे समाज की दोहरी सोच के कारण पीड़ा में हैं। पिछले दो दशकों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उन पर यह दबाव लगातार बना हुआ है कि वे घर और परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता के लिए आर्थिक सहयोग दें, धन अर्जित करें, स्वयं को किसी न किसी ऐसे कार्य में संलग्न करें जिससे अर्थ सर्जन हो, वहीं दूसरी ओर उनसे यह अपेक्षा पूर्वोत्तर कायम है कि घरेलू दायित्वों का भी वह निर्वहन करें। यह सोच अमूमन युवा वर्ग से लेकर प्रौढ़ावस्था के लोगों तक की है। चिल्ड्रेन्स मूवमेंट फॉर सिविक अवेयरनेस (सी.एम.सी.ए.) का शोध यह बताता है कि देश के ज्यादातर युवा मानते हैं (57 प्रतिशत) कि महिलाओं को मुख्य रूप से परिवार और बच्चों की देखभाल करनी चाहिए। परन्तु यह सोच इस तथ्य को पुरजोर तरीके से स्वीकार करती है कि परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता के लिए महिलाओं को घर से बाहर निकलकर काम करना चाहिए। इस दोहरी सोच के चलते देश की महिलाएँ अवसाद का शिकार हो रही है।

किसी भी समाज में स्त्री की प्रस्थिति को मापने का सबसे सहज तरीका है 'उसके निर्णय लेने की क्षमता'। यह क्षमता तभी उत्पन्न हो सकती है जब स्त्री आत्मनिर्भर हो, परन्तु यह 'आत्मनिर्भरता' स्त्रियों की सबसे बड़ी चुनौती बन कर उभरी है। आम राय यही है कि बीते दशकों में महिलाएँ आत्मनिर्भर हुई हैं, परन्तु विभिन्न शोध इस तथ्य को नकार रहे हैं। विश्व बैंक के एक अध्ययन में श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी में तीव्र कमी दर्ज की गयी है। वर्ष 2004-05 से 2010-11 के बीच इसमें 12 से 14 प्रतिशत तक की गिरावट दर्ज की गई क्योंकि कृषि से इतर और अपने आवास के आसपास उनके लिए रोजगार के सुरक्षित अवसर नहीं थे। कोई भी इस गिरावट की स्पष्ट वजह नहीं बता पाया पर यह तय है कि भारत में महिलाओं के प्रति कार्यस्थलों में संवेदनशीलता का अभाव है। स्त्री की आत्मनिर्भरता सिर्फ अपने परिवार को आर्थिक सुदृढ़ीकरण देने की पहल मात्र नहीं थी,अपितु यह उसके आत्मविश्वास को बनाए रखने के लिए बेहद अहम बिन्दु है, परन्तु पितृसत्तात्मक भारतीय समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो इस स्वतंत्रता का न केवल पुरजोर विरोधी है, बल्कि अपने झूठे दंभ को बनाए रखने के लिए वह उसे किसी भी सीमा तक हानि पहुँचाने से गुरेज नहीं करता। वह इससे भली-भांति परिचित है कि स्त्री अपने विरुद्ध हो रहे दैहिक, मासिक या मौखिक अत्याचार का सहजता से विरोध नहीं करेगी, क्योंकि भारतीय समाज में तथाकथित प्रतिष्ठा का मोल जीवन से भी कहीं अधिक है।

भारतीय समाज में स्त्री जीवन की किसी भी समस्या को आम वर्ग से लेकर खास तक संवेदनशीलता से नहीं लिया जाता है। ऑफिस में महिलाओं की सुरक्षा पर सिर्फ तीन प्रतिशत संस्था ही ध्यान देती है। चौंकाने वाली बात यह है कि मुम्बई में कार्यस्थल पर ही यौन उत्पीड़न को लेकर बने कानून के बारे में ज्यादातर कामकाजी महिलाओं को जानकारी ही नहीं। 'कॉम्पलाई करो' नामक निजी संस्थान द्वारा किए गए शोध में पता चलाि क8 6प्रतिशतस ंस्थानोंक ेके न्द्रस रकारके म हिलाउ त्पीड़न (रोकथाम निषेध व निवारण) अधिनियम 2013 के बारे में पता ही नहीं है।

भारतीय महिलाओं का देश की राजनीति में हस्तक्षेप, उनकी वास्तविक प्रस्थिति को बताता है। भारतीय राजनीति की बात करें तो स्वतंत्रता के बाद जब 1951 में पहली लोकसभा बैठी तो उसमें सिर्फ 22 महिला सदस्य थी और 2014 के लोकसभा चुनाव में 66महिलाएँ चुनकर लोकसभा पहुँची। इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन (आई.पी.यू.) की रिपोर्ट तो यही बताती है कि भारत की संसद या विधानसभा में महिला जनप्रतिनिधियों की काफी कम उपस्थिति महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण राजनीतिक मानसिकता का प्रतीक है।

यह सत्य है कि महिलाओं को उनके अधिकार तो मिल गए हैं, लेकिन उसके प्रयोग की स्वतंत्रता नहीं मिली है। यहाँ तक कि विभिन्न शोध यह भी बताते हैं कि भारत में राजनीति में आने के महिलाओं के अधिकार से उन्हें रोका जाता है। उन्हें शारीरिक हिंसा और हिंसा की धमकी देकर रोके जाने के प्रयास किए जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक महिलाओं की स्थिति को सुधारने हेतु अनेक संवैधानिक उपायों एवं योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा महिलाओं हेतु 27 लाभार्थी उन्मुख योजनाओं की संकल्पना शुरू हुई। वहीं आठवीं योजना (1992-97) में लैंगिक परिदृश्य और सामान्य विकासात्मक क्षेत्रों के द्वारा महिलाओं के लिए निधियों के निश्चित प्रवाह को सुनिश्चित करने पर बल दिया गया। नौवीं पंचवर्षीय योजना में 'महिला घटक योजना' को एक प्रमुख कार्य नीति के रूप में अंगीकार किया गया तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना में, लैंगिक भेद को समाप्त करने एवं लैंगिक प्रतिबद्धताओं को बजट प्रतिबद्धताओं में परिवर्तित करने के लिए 'जेंडर बजटिंग' के प्रति प्रतिबद्धता को बल दिया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में लैंगिक विभाजन की रेखा को समाप्त करने की कटिबद्धता दृष्टिगोचर होती है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य भी लैंगिक भेदभाव को समाप्त करना है।

भारतीय महिलाएँ वैदिक संस्कृति से लेकर आज तक विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई अपनी अनंत यात्रा को यथावत बनाए रखे हुए हैं। इस यात्रा के मध्य बहुत कुछ बदला, परन्तु यदि कुछ नहीं बदला तो वह महिलाओं की सहिष्णुता, संघर्षशीलता एवं जीवटता। शायद यही कारण है कि विभिन्न अवरोधों के बावजूद भी महिलाएँ अपनी पहचान बना रही है और यही उनकी विजय है।

राजस्थान में महिलाओं की स्थिति

राजस्थान का सम्बन्ध एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था, सामन्तवाद से रहा है। समाज की रचना सामन्तवादी होने के कारण कतिपय विशिष्ट आधारों पर निर्मित थी, इसलिए राजस्थान की महिलाओं की विवेचना उस सामन्तवादी परिवेश से हटकर नहीं की जा सकती, जिसका संबंध क्षेत्रीय सामाजिक संरचना से है।

राजस्थान में महिलाओं की प्रस्थिति जानने के लिए सैद्धांतिक तथा अवधारणात्मक विवेचन में तीन तथ्यों पर दृष्टिपात किया गया है। पहला, सामाजिक संरचना में महिलाओं की असमान एवं निम्न प्रस्थिति से संबंधित है। दूसरे तथ्य का सम्बन्ध उस विश्वव्यापी आन्दोलन से है जो अब तक की महिलाओं की प्रस्थिति को सबलीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से बदलना चाहते हैं और तीसरे तथ्य का सम्बन्ध भारत में संविधान के उस 73वें और 74वें संशोधन से है, जिसने भारत के इतिहास में पहली बार महिलाओं को विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का पंचायतीराज व्यवस्था में आरक्षण निश्चित किया है।

राजस्थान में महिलाओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण– राजस्थान में महिलाओं की स्थिति के विश्लेण से पूर्व, यह आवश्यक हो जाता है कि हम राज्य की सामाजिक संरचना और सामाजिक जीवन को संक्षिप्त में समझे। मूल रूप में देश की सामाजिक संरचना वैदिककाल से ही जिन व्यवस्थाओं के आधार पर अपना अस्तित्व कायम किए रही उसमें वर्णव्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली, वर्णाश्रम, संस्कार आदि प्रमुख है। संपूर्ण देश का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन का मूल ढांचा ही राज्य के सामाजिक एवं पारिवारिक ढाँचे का आधार था, जिसके मध्यकाल तक आते-आते कई प्रमाण भी मिले हैं।

जैसा कि हम भारत में महिलाओं की प्रस्थिति का अध्ययन करके जान चुके हैं कि वैदिक काल में सभी परिप्रेक्ष्य से महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति सम्माननीय थी। धर्मसूत्र, स्मृति एवं महाकाव्य व पुराणकाल की लंबी अवधि में कई ऐसे सामाजिक परिवर्तन हुए कि शनैः-शनैः स्त्रियों की प्रस्थिति में गिरावट आती गई। जो कि अट्ठारहवीं सदी तक विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई अपने अस्तित्व को ढूँढ पाने में असफल रही।

राजस्थान के संदर्भ में मध्यकाल का समय वह था जहाँ एक ओर तो सामंतवादी संरचना सुदृढ़ हुई वहीं दूसरी ओर मुस्लिम आक्रमण हुए और इन दोनों तत्वों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से महिलाओं की स्थिति को और भी अधिक पीड़ादायक बना दिया।

परिवार, सामाजिक संरचना की केन्द्र इकाई है। समाज वैज्ञानिकों एवं इतिहासकारों का विश्वास है कि पूर्व में राजस्थान में संभवतः मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था रही है। इस तथ्य के पीछे आहड़ और कालीबंगा सभ्यता के अवशेषों से प्राप्त जानकारी है। लेकिन कालान्तर में कृषि युग के आरम्भ के साथ पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने अपना स्वरूप,

समाज में ग्रहण किया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने संपूर्ण भारत की ही तरह राजस्थान में स्त्री के महत्व को कम कर दिया।

विभिन्न शोध यह बताते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आरंभिक वर्षों में यद्यपि कन्या जन्म उल्लास और हर्ष का विषय नहीं था, परन्तु उनके जन्म के पश्चात् उनकी उपेक्षा भी नहीं की जाती थी। शनैः-शनैः कन्या जन्म दुर्भाग्य का कारण माना जाने लगा और राज्य में यह भी कई बार पाया गया कि कन्या के जन्म के साथ उनका वध कर दिया गया।

वैदिक काल से ही हमारी सामाजिक संरचना में वर्ण व्यवस्था का महत्व रहा है और इसी वर्ण व्यवस्था का विखंडित स्वरूप आगे चलकर जाति व्यवस्था हो गया। इस तथ्य के प्रमाण तत्कालीन पुरालेखों तथा साहित्यिक दस्तावेजों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जातिगत व्यवस्था में ऊँच-नीच का संस्तरण राज्य में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक संस्तरण की इस व्यवस्था ने राज्य की स्त्रियों की प्रस्थिति को प्रभावित किया। राज्य में सबसे प्रभावशाली और प्रभुत्वशाली राज्य के शासक, उनके वंशज या अन्य राजपूत वर्ग के वंशज थे, जिनके पास जागीरें थीं। इस सामन्तवादी व्यवस्था में नैतिकता, नारी और भूमि को एक दृष्टि से देखती थी। सामन्तवादी इस व्यवस्था में बहुविवाह अपनी पराकाष्ठा पर था। स्त्री के जीवन की परिधि घर की चारदीवारी सुनिश्चित की गई। स्वतंत्रता, समानता तथा अपने अधिकारों के लिए खड़े होना भी, राज्य की स्त्रियों के लिए अकल्पनीय था।

यदि हम सम्पत्ति के संदर्भ में महिलाओं के अधिकार की चर्चा करें तो पाएँगे कि धर्मशास्त्रों द्वारा तय किए गए सम्पत्ति के अधिकार के मानदण्ड राजस्थान में भी यथावत दिखाई देते हैं। राजस्थान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि व्यवस्था थी और महिलाएँ पुरुषों की ही भाँति खेतों में कार्य करती थीं। कृषि कार्य ही नहीं, पशुपालन, खेतों में बुआई, सिंचाई, सूत काटना, मिट्टी के बर्तन बनाना आदि कार्यों में भी राज्य की महिलाएँ संलग्न रहती थी।

भारतीय संस्कृति में संस्कार वह है जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है अर्थात् संस्कार वे रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती है। जीवन के बौद्धिक विकास से संबंधित ज्ञान तथा प्रकाश प्रदान करने वाले शिक्षा से जुड़े सभी संस्कारों जैसे विद्यारम्भ, उपनयन, वेदाध्ययन तथा समावर्तन के वैदिक मंत्रों के साथ संस्कार संपादन के सारे अधिकारों से स्त्रियों को वंचित कर दिया। स्पष्ट है कि व्यक्ति के विकास, उन्नति तथा बौद्धिक उत्कर्ष का संबंध मात्र पुरुषों से था।

व्यवस्थित और विश्वसनीय शोध एवं आँकड़ों के अभाव में राजस्थान में पुरातन शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में विश्लेषण करना मुश्किल कार्य है। 'मधुमालती' में शिक्षा को अनन्त ज्ञान और आजीविका का स्रोत बताया गया है। राजस्थान की कई रियासतों में प्राथमिक शिक्षा के विद्यालय थे, जिन्हें उपासरा, पोसाल, मकतब आदि कहते थे। शिक्षा के सम्बन्धमंे य हस् पष्टथ ाि कम ध्यकालत कअ ाते-आतेर ाजस्थानमंे महिलाओं से संबंधित कई प्रयासों के प्रचलन के चलते स्त्रियों से शिक्षा के अधिकार छीन लिए गए। राजस्थान में लड़कियों के लिए अलग पाठशालायें नहीं थीं। शाही परिवार तथा मध्यमवर्ग की महिलाएँ यद्यपि घर पर शिक्षक बुलाकर पढ़ लिया करती थीं, परन्तु यहाँ भी संगीत, चित्रकला जैसे विषयों को ही उनके द्वारा पढ़ा जाता था। स्त्रियों की शिक्षा का सबसे बड़ा बाधक तत्व 'बाल विवाह' जैसी कुप्रथा बनी। राजस्थान देश के उन राज्यों में से एक था जहाँ बाल विवाह के आँकड़े अन्य राज्यों से अपेक्षाकृत बहुत अधिक थे।

मध्यकाल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा, कन्या वध जैसी प्रथाएँ राज्य की महिलाओं को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित कर रही थीं, परन्तु सती प्रथा ने मानवता को कलंकित कर दिया था। स्त्री-शुचिता, चारित्रिक-उत्कृष्टता एवं भारतीय संस्कृति के परम्परागत निर्वाहन के नाम पर स्त्री के समस्त व्यक्तित्व को इस तरह सम्मोहित कर दिया जाता है कि वह स्वयं अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेती। 'जौहर प्रथा' को तथाकथित गौरवमय परम्परा, राज्य के सत्ता सम्पन्न एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पोषकों ने घोषित कर येन-केन प्रकारेण स्त्री को विवश किया कि वह वैधव्य को छोड़कर स्वयं को पति के साथ चिता में जला ले। उल्लेखनीय है कि राजा राम मोहन राय ने पुरजोर तरीके से 'सती प्रथा'क ाि वरोधक रतेह ुएय हउ ल्लेखितं कयाि कव ेदोंए वंह मारे धर्मग्रन्थों में 'सती प्रथा' के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं है। इसलिए इसे शास्त्रसम्मत कहना अनुचित होगा।

महिलाओं के संदर्भ में जब मध्यकाल में कुप्रथाओं की चर्चा की जाती है तो राज्य का नाम 'डाकन प्रथा' से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। इस परम्परा को यूँ तो अंधविश्वास कहा जाता रहा है परन्तु इस परम्परा का सच इससे भी कहीं अधिक एक सोची-समझी गई योजना से ज्यादा रहा है। शोध बताते हैं कि अधिकतर 'डायन' उन्हीं महिलाओं को घोषित किया जाता था, जो अकेली हो या विधवा हो और जिसकी सम्पत्ति को परिवार के अन्य सदस्य या फिर गाँव के प्रभुत्वशील लोग हड़पना चाहते हों। ऐसी महिलाओं को गाँव के पुजारी या तांत्रिक के जरिए, 'डायन' घोषित करवाया जाता था और इस क्रूर प्रथा के चलते अंततोगत्वा महिला को इतना प्रताड़ित किया जाता कि उसकी मृत्यु हो जाती। दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष तो यह है कि आज भी यदाकदा, राज्य के सुदूर पिछड़े क्षेत्रों से ऐसी खबर आती रहती है।

राजस्थान की महिलाओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करते हुए भक्तिकाल के संदर्भ में चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। भक्ति आंदोलन का उद्भव समाज में फैली कुप्रथाओं के विरुद्ध हुआ था। भक्ति आंदोलन की इस परम्परा में राजस्थान में भी कई संत हुए जिनमें संत रैदास, जांभोजी, रामचरण दादू, धन्ना आदि प्रमुख थे, लेकिन स्त्रियों की स्थिति को समझने की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम 'मीराबाई' का है। मध्यकाल में जब स्त्री को घर की चारदीवारी के भीतर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया गया था, उस समय मीरा ने हर सामाजिक

बंधन को तोड़ कर ईश्वर भक्ति में स्वयं को लीन करते हुए काव्य रचना की। उनके काव्य में लोकलाज तजने, कुल मर्यादा को लांघने का उल्लेख मिलता है। यहाँ आध्यात्मिक समानता पर आधारित भक्ति का आचरण स्त्री पराधीनता को प्रत्यक्ष चुनौती थी।

सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयास

भारत में ब्रिटिश शासन के आधिपत्य के फलस्वरूप परम्परागत सामंती सामाजिक संरचना में बदलाव आया। अंग्रेजी न्यायालयों की स्थापना ने सामंतों के अधिकारों को बहुत सीमित कर दिया।

राजस्थानम ेंब दलावक ीअ लखज गानेम ें आर्यस माज 'क ा अभूतपूर्व योगदान रहा। उन्होंने शिक्षा पर विशेष बल देते हुए कई विद्यालय खोलकर स्त्रियों की शिक्षा के लिए नवीन द्वार खोले।

समाज सुधारकों के प्रयासों के चलते ब्रिटिश सरकार ने 'डायन (डाकन) प्रथा' को समाप्त करने हेतु भी शासकों को पत्र लिखे, अतः 1853 में तत्कालीन उदयपुर राज्य ने इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया तथा ऐसे अपराध में संलग्न लोगों के लिए कारावास के दण्ड की घोषणा की। इसी प्रकार तत्कालीन जयपुर, कोटा आदि राज्यों ने भी इसे गैर कानूनी घोषित कर दिया।

बहुपत्नी विवाह, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसी कुप्रथाओंके ि वरुद्धस न्1 877म ेंउ दयपुरम हाराणास ज्जनि संहक ी अध्यक्षताम ें3 2प्र मुखस ामंतोंए वंर ाज्याधिकारियोंक ीए कस भाम ें विवाह सम्बन्धी नियम बनाने पर विचार हुआ तथा 'देश हितैषिणी सभा' की स्थापना की गई। यह एक मात्र ऐसी संस्था थी जिसके माध्यम से शासकों ने प्रथम बार महिलाओं के हित के लिए कदम उठाए और विवाह सम्बन्धी नियम बनाए गए। 1887 में 'वाल्टर कृत राजपूत हितकारिणी सभा' का गठन कर राज्य प्रतिनिधियों के प्रस्ताव पारित किये गये। राज्य में एक केन्द्रीय संगठन तो स्थापित नहीं हो सका था, परन्तु कई स्वयंसेवी संस्थाएँ बनी। अजमेर में राजस्थान सेवा संघ, मारवाड़ की मरुधर हितकारिणी सभा, देशी राज्य परिषद संस्थाओं ने सामाजिक जन जागृति फैलाई।

समाज सुधारकों के दबाव के कारण ही ब्रिटिश अधिकारियों ने सती प्रथा या विधवा दहन, जैसी अमानवीय प्रथा को समाप्त करने के लिए राजस्थान के शासकों को विवश किया। जिसकी परिणति यह रही कि जोधपुर एवं उदयपुर के शासकों के आरम्भिक विरोध के बाद धीरे-धीरे राजस्थान के दूसरे शासक भी तैयार हो गए। सर्वप्रथम 1822 में बूंदी में विधवा दहन को गैर कानूनी घोषित किया गया, उसके बाद 1830 में अलवर, 1844 में जयपुर, 1846में डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़, 1848में जोधपुर तथा कोटा तथा 1860 में उदयपुर राज्य ने विधवा दहन को अवैध करार कर दिया।

राज्य में कन्या वध का भी विरोध हुआ। बांकीदास की ख्यात के अनुसार 1836में महाराणा रतन सिंह ने गया में अपने सभी सामंतों की सभा आयोजित कर शपथ दिलाई थी कि वे अपनी बेटियों का वध नहीं करेंगे। तत्पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने इसे हत्या बताते हुए 'कन्या वध प्रथा' को बंद करने की चेष्टा की। अंततः 1834 में तत्कालीन कोटा राज्य ने इसे गैरकानूनी घोषित किया, उसके पश्चात् 1837 में बीकानेर, 1839-44 के मध्य जोधपुर, जयपुर तथा 1857 में तत्कालीन उदयपुर राज्य ने भी इस गैर कानूनी घोषित कर दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात् राज्य में महिलाओं की प्रस्थिति

स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं एवं महिलाओं की समानता, सुरक्षा एवं हितों को ध्यान में रखते हुए बने विभिन्न वैधानिक प्रावधानों ने 'स्त्री की प्रस्थिति' को उच्च करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि इन वैधानिक एवं संवैधानिक प्रावधानों ने स्त्रियों की प्रस्थिति में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया पर यह अवश्य हुआ कि भारतीय महिलाओं को अपने अधिकारों को पाने में सहजता हो गई। स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान की महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन हुआ। शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय से संबंधित अधिकांश सूचकांकों में सकारात्मक प्रगति हुई, परन्तु यह राष्ट्रीय स्तर से अब भी कम है। उदाहरणार्थ लिंग आधारित आँकड़ों के अनुसार (SRS 2011) शिशु मृत्यु दर बालिकाओं में 553 प्रति 1000 जीवित जन्म है। सामान्य लिंगानुपात जो 2001 में 921 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष था, वह बेहतर होकर 2011 में 926 हो गया। लैंगिक पक्षपात स्त्रियों की गरिमा पर चोट पहुँचता है। यह एक कटु सत्य है कि गर्भ में आने से लेकर स्त्री जीवन के हर स्तर पर उसकी स्थिति, सुरक्षा एवं संरक्षण का प्रश्न गहराता जाता है। यह भी सत्य है कि आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति ने अमूमन लोगों की सोच को परिवर्तित नहीं किया है।

भारत के अन्य क्षेत्रों के समान राजस्थान में भी महिलाओं के विरुद्ध लैंगिक भेदभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होता है। बाल विवाह, जो कि राजस्थान में आज भी चोरी-छिपे सम्पन्न किए जाते हैं, राज्यस्तरीय प्रयासों के चलते उनमें शनैः-शनैः सुधार हो रहा है। विवाह आयु के आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि राज्य में पाँच में से एक महिला (21.9 प्रतिशत) का विवाह वैधानिक आयु 18 वर्ष से कम आयु में हुआ था और यह अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों में (26.8प्रतिशत) शहरी क्षेत्रों (9 प्रतिशत) की तुलना में बहुत अधिक था।

बाल विवाह निषेध जो कि स्वतंत्रता के बाद राज्य सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी बन चुकी है। वैधानिक नियमों की सख्ती से पालना करने के अलावा जनजागृति के माध्यम से राज्य में इसे रोकने की चेष्टा की जा रही है। सदियों से जड़ों में समाई इस कुरीति को दूर करना सहज नहीं है, परन्तु राज्य सरकार के निरंतर प्रयासों के चलते राज्य में विवाह की औसत आयु 19.7 वर्ष (AHS 2010-11 के अनुसार) तक बढ़ गई है। परन्तु अभी भी राज्य के ग्रामीण इलाकों में प्रत्येक चौथी बालिका का

विवाह वैधिक आयु से कम में हो जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए दो महत्वपूर्ण कानून बने, पहला दहेज निरोधक अधिनियम तथा दूसरा घरेलू हिंसा से सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियम। राज्य के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य रहा है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा अन्य प्रचलित मान्यताओं के चलते वैवाहिक और अन्य लैंगिक मामलों में बढ़ोतरी हुई है। लगभग 46.3 प्रतिशत विवाहित महिलाओं ने कभी न कभी पति द्वारा की गई हिंसा की शिकायत की है। राजस्थान में घरेलू निर्णयों में विवाहित महिलाओं की भूमिका मात्र 22.8 प्रतिशत है एवं ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत और भी कम है। शिक्षा के निर्णय लेने में उनकी भूमिका बढ़ी है, लेकिन चौंकाने वाला तथ्य है ज्यादा शिक्षा प्राप्त महिलाओं में से भी 57.8 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू निर्णयों में कोई योगदान नहीं दिया है। (NHFS III, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण तृतीय)।

उपर्युक्त परिस्थितियों के विश्लेषण से यह तथ्य तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य, पोषण, बालिका और महिलाओं के कल्याण हेतु सामाजिक, पारिवारिक तथा सरकारी स्तर पर प्रयासों को बढ़ाने के साथ ही, राज्य में महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक रूप से परिवर्तन आया है। सामाजिक, आर्थिक विकास से यद्यपि राज्य की महिलाओं की स्थिति सुधरी है, परन्तु लैंगिक असमानता प्रत्येक क्षेत्र में आज भी दृष्टिगोचर होती है।

हमें यह विचार करना होगा कि किन साधनों के माध्यम से हम राज्य की महिलाओं के साथ हो रहे किसी भी किस्म के भेदभाव को समाप्त करें। साथ ही उन्हें स्वयं के निर्णय लेने में सक्षम बना सके। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि राज्य की महिलाओं को उपलब्ध सेवाओं पर समान अधिकार और संसाधनों पर न्यायसंगत नियंत्रण का अधिकार मिले। इन उद्देश्य की पूर्ति हेतु न्याय प्रवर्तन एजेंसियाँ, नागरिक, समाज, सरकार, चिकित्सा सेवा प्रदाता, परिवार और समुदाय द्वारा एक व्यापक और समन्वित कार्यवाही की जानी आवश्यक है।

सामाजिक चेतना

हमने इस अध्याय के आरम्भ में भली-भाँति तरीके से यह जाना कि भारत की महिलाओं की वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक क्या स्थिति रही है? हमने यह भी जाना कि किन संघर्षों के उपरान्त, उन्हें संवैधानिक एवं वैधानिक दोनों ही स्तरों में सामाजिक एवं लैंगिक भेदभाव के हर स्वरूप से मुक्ति पाने के मार्ग मिले हैं? पर इन सबके साथ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यहाँ यह उत्पन्न होता है कि क्या वाकई महिलाएँ अपने अधिकारों का उपभोग कर पा रही हैं? क्या वह उन सरकारी नीतियों को जानती हैं जो उनके सर्वांगीण विकास के लिए केन्द्र एवं राज्यों सरकारों ने बनाई हैं? क्या उन्हें यह विदित है कि उनका स्वास्थ्य, पोषण और सुरक्षा देश की प्राथमिकता है? यह वह प्रश्न है जिनके लिए 'हाँ' या 'ना' में उत्तर देना संभव नहीं। इस विषय का गंभीर विश्लेषण करने के लिए हमें कुछ ऐसे उदाहरणों को देखना है जिनका संबंध, सामाजिक चेतना है।

सामाजिक चेतना का अर्थ– सामान्यत: सामाजिक चेतना से हमारा तात्पर्य किसी देश तथा काल विशेष से सम्बन्धित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तशील जागृति से है। इसका उद्भव सामाजिक अन्याय, शोषण, अनीति आदि जैसी नकारात्मक भावनाओं के विरुद्ध होता है।

अध्याय के इस भाग में हम चूंकि महिलाओं की सामाजिक चेतना केि वषयम ेंब ातक रेंगेइ सलिएय हाँस ामाजिकच ेतनाक ास म्बन्ध, महिलाओं को प्राप्त संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत, अधिकारों के प्रति चैतन्यता से है। अर्थात् क्या देश की आधी आबादी अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागरुक है? इस विचारधारा के आस-पास, महिलाओं की सोच ही उनकी 'चेतना' है।

महिला और सामाजिक चेतना– महिलाओं की सामाजिक चेतना का विश्लेषण करने से पूर्व हमें यह समझना होगा कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में आज भी महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों को न केवल पुरुषों द्वारा चुनौती मिल रही है बल्कि उन्हें प्रथम पंक्ति में शामिल न करने की जद्दोजहद एवं प्रयास किए जाते रहते हैं। इन सबके बावजूद देश की आधी आबादी में यह चेतना धीरे-धीरे जाग रही है कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्राप्त करना उनका कर्तव्य है क्योंकि इसी में देश के नीति निर्माताओं की भी सफलता है।

महिलाओं में सामाजिक चेतना की चर्चा करते हुए हम कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर दृष्टिपात करेंगे।

महिला समानता की बात करते हुए महिलाओं को प्राप्त राजनैतिकअ धिकारस र्वप्रमुखअ ौरि नर्णायकप्र तीतह ोतेह ैंइ सलिए सर्वप्रथम इसी बिन्दु पर चर्चा करना उचित होगा।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त महिलाओं को दो प्रमुख अधिकार हैं, महिलाओं को मताधिकार और विधानमंडल के लिए योग्यता। महिला मताधिकार की माँग सर्वप्रथम 1917 में की गई थी, किन्तु साउथ बरो फ्रेन्चाइज कमेटी ने 1918 में इस माँग को अस्वीकार कर दिया। 1919 में सरकार ने राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया कि वे स्त्री मताधिकार के सम्बन्ध में अपने अलग विधान लागू करें। इस प्रकार के विधान राजकोट में 1923 में, मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में 1925 में, बिहार तथा उड़ीसा में 1929 में पारित किए गए। इस प्रकार स्त्री को राजनैतिक अधिकार देने की पहल जारी रही परन्तु मील का पत्थर सिद्ध हुआ सन् 1993 में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को प्राप्त आरक्षण। महिलाओं को आरक्षण तो प्राप्त हो गया, परन्तु भारतीय राजनीति के प्रथम पायदान पर भी महिलाओं की उपस्थिति को स्वीकार्य करना पुरुष सत्तात्मक समाज के लिए सहज नहीं रहा है। सदियों से सत्तासीन पुरुष सत्तात्मक समाज सत्ता का वास्तविक हकदार स्वयं को मानकर, उस सत्ता को नियंत्रित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। उसके लिए यह स्थिति इसलिए बहुत सहज हो जाती है क्योंकि भारतीय समाज में वह भी विशेषकर ग्रामीण पृष्ठभूमि में स्त्री स्वयं को अपने पति से हर दृष्टि से कमतर समझती है। महिला सरपंचों

की राह में कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें से सर्वप्रथम पंचायत के कामकाजों की जानकारी का अभाव और इसके चलते ही उन्हें मजबूरन अपने पति या गाँव के शक्तिशाली लोगों की बातों को स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु धीरे-धीरे यह परम्परा बदल रही है। जो महिलाएँ साक्षर हैं और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं उन्होंने इस तस्वीर को बदलने की चेष्टा की है। देहरादून (उत्तराखण्ड) जिले के सिंधारे गाँव की प्रधान ममता उन महिलाओं में से एक है, जिसने अपने पति द्वारा फर्जी हस्ताक्षर करके पैसों की हेराफेरी की शिकायत की और अब खुद पंचायत के सारे फैसले लेती है। ममता जैसी महिलाओं को अपने अधिकार के प्रति सजग होने पर भी कई बार शारीरिक और मानसिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

देश की विभिन्न पंचायतों में महिला सरपंचों द्वारा किए गए उत्कृष्ट कार्यों की ही परिणति है कि 2008 के मध्य में केन्द्र ने एक फैसला लिया जिसमें महिला सरपंचों को डेढ़ साल से पहले अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से हटाया नहीं जा सकता। उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व महिला सरपंचों को सत्ता से दूर रखने के लिए उन पर अनर्गल आरोप लगा कर पद से हटाए जाने के कई मामले प्रकाश में आए थे। सरकार का यह निर्णय महिलाओं की कार्यक्षमता और नेतृत्व पर भरोसे को दर्शाता है।

सत्ता पर आसीन ही नहीं, अपितु अपने मताधिकारों का प्रयोग करने वाली महिलाएँ भी अपने 'मत' के महत्व को जानती है। विभिन्न शोध यह बताते हैं कि महिला मतदाता उन प्रतिनिधियों को अपना मत देना पसंद करती है जो सामाजिक बुराई के विरुद्ध हों। इसमें शराबबंदी, शिक्षा के लिए सुदूर ग्रामीण अंचलों में स्कूल, पानी की सुविधा जैसे कई मुद्दे हैं।

हम अगर यह कहते हैं कि आज भी महिलाएँ अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति उदासीन हैं तो यह गलत होगा। स्त्री में चेतनता है पर आवश्यकता है उचित मार्गदर्शन की।

संयुक्त राष्ट्र तथा सेंटर फॉर सोशल रिसर्च द्वारा राजनीति में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर किए गए अध्ययन में कहा गया है भारत में महिला मतदाताओं और राजनीतिक दलों में महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत बढ़ा है, लेकिन राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थानों में उनका प्रतिशत कम हुआ है। अध्ययन में पाया गया है कि राजनीति में आने के महिलाओं के अधिकार से उन्हें रोका जाता है। देश में शारीरिक हिंसा, गाली-गलौच और हिंसा की धमकी देकर उन्हें रोके जाने के प्रयास किए जाते हैं।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका स्वयं में एक चुनौती है,क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में आज भी यह स्थिति अस्वीकार्य है। ऐसे में जितना अधिक नेतृत्व उन्हें मिलेगा उतना ही शनैः-शनैः उनके लिए यह स्थिति असहज से सहज में परिवर्तित होती जाएगी। इसका जीवंत उदाहरण पंचायत में महिलाओं की उपस्थिति है।

महिला की अपने अधिकारों के प्रति चेतनता की हम जब बात करते हैं कि उस सारी बातों का सार इस तथ्य पर टिका होता है कि 'क्या महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता है' क्योंकि 'निर्णय' लेने की क्षमता स्त्री सशक्तीकरण का एक प्रमुख माप है। निर्णय लेने की क्षमता का विकास तभी संभव है जब स्त्री के भीतर आत्मविश्वास हो। यह क्षमता तभी विकसित होती है जब स्त्री आत्मनिर्भर हो परन्तु यह 'आत्मनिर्भरता' स्त्रियों की सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरी है।

स्त्रियाँ अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति कितनी सजग है इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि उनकी इस सजगता के मध्य कौन से अवरोध हैं? वैधानिक रूप से स्त्री और पुरुष को समान आर्थिक अधिकार प्राप्त हैं। यहाँ तक कि महिला और पुरुषों को पैतृक सम्पत्ति में बराबर का अधिकार दिया गया है। साथ ही कानून महिला को भी पाटीदार या साझीदार के तौर पर बटवारे के मामले में समान अधिकार देता है। परन्तु इन सारे अधिकार के बावजूद भी बेटियों को घर का मुखिया स्वीकार नहीं किया जाता। दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस संदर्भ में अपने एक निर्णय (2016) में कहा कि जिस घर में बड़ी बेटी होगी वहाँ पर वही कर्ता-धर्ता (मुखिया) होगी। यहाँ इस निर्णय के साथ दो तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं कि महिलाएँ अपने अधिकारों को लेकर 'चेतन' है और इसकी प्राप्ति के लिए वह न्यायालय के दरवाजे खटखटाने से भी नहीं हिचकती परन्तु इसका दूसरा पहलू यह है कि आखिर क्यों ये अधिकार स्वाभाविक रूप में नहीं दिए जाते? क्यों महिलाओं को इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है? दरअसल इस संपूर्ण संदर्भ को दो दृष्टिकोणों से देखे जाने की जरूरत है, पहला तो यह कि जो महिलाएँ देश में, महत्वपूर्ण पदों पर बैठी हैं क्या यह उनके लिए सहज था, यही क्यों हर वह महिला जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है, क्या उसके लिए यह यात्रा सहज रही है और दूसरा, घरेलू दायरे में आज भी क्यों महिलाओं के अधिकारों की अवहेलना कर दी जाती है? इन दोनों ही प्रश्नों का मूल छिपा है 'सत्ता का सुख' में। अगर हमारे लिए सत्ता का तात्पर्य मात्र 'राजनैतिक पद' से है तो हम गलत हैं। सत्ता का व्यापक अर्थ घरेलू और बाहरी सभी प्रकार के निर्णयों को लेने के अधिकार से है और यह निर्णय लेने की क्षमता पर सैकड़ों वर्षों से पुरुषों ने अपना एकाधिकार माना है।

अविभाजित हिन्दू परिवार में सम्पत्ति के बँटवारे या विक्रय सम्बन्धी निर्णय वही लेता है जो परिवार का मुखिया है। यूँ तो कानूनन स्त्री को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार देने की पहल हुई है पर देश के अधिकांश परिवारों में इसका मौन विरोध है और जिन बेटियों ने अपने इस अधिकार के प्रति चेतनता है, उन्हें प्रत्यक्ष रूप से यह संकेत दे दिए जाते हैं कि अपने आर्थिक अधिकार की सुरक्षा करने की अगर वह पहल करेंगी तो उन्हें अपने परिवार से सभी प्रकार के भावनात्मक सम्बन्ध खत्म करने होंगे। कुछ इसी तरह का उदाहरण, तब देखने को मिला, जब महिला मेकअप आर्टिस्टों को बॉलीवुड (मुम्बई फिल्म जगत) में पुरुष मेकअप आर्टिस्टों ने जगह बनाने नहीं दी। उल्लेखनीय है कि 2015 के आरम्भ में इस पूरे सन्दर्भ को लेकर उच्चतम न्यायालय ने रोष जताया, जिसके चलते महिला मेकअप आर्टिस्टों के लिए दरवाजे तो खोल दिए गए लेकिन उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से रोके रखने के लिए सदस्यता शुल्क और शर्तें बढ़ा दी गईं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि महिलाओं को अपने हर अधिकार के

लिए न्यायालय तक पहुँचना पड़ता है। पर इससे यह तो स्पष्ट है कि देश कीम हिलाओंक ाकु छी हस्साह ेस हीस ामाजिकरू पस`च`तनह ै। स्वाभाविक है आने वाले समय में ऐसी महिलाओं की संख्या बढ़ेगी जो कि अपने अधिकारों के लिए पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देंगी।

राजनैतिक एवं आर्थिक अधिकारों को लेकर संघर्ष करती भारतीय महिलाएँ सामाजिक अधिकारों के प्रति भी जागरूक हैं। वह समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध कर रही हैं। आज भी देश के कई राज्यों में चोरी-छिपे बाल विवाह सम्पन्न किए जाते हैं जो कि महिलाओं के जीवन के समस्त विकास के मार्गों को अवरुद्ध कर देता है परन्तु देश की स्त्रियाँ अब बौद्धिक रूप से चेतन और मानसिक स्तर पर साहसी बन रही हैं। पश्चिम बंगाल के सबसे पिछड़े जिलों में से एक पुरुलिया, जहाँ की महिला साक्षरता दर देश में सबसे कम है, कि 12 वर्षीय बीड़ी मजदूर रेखा कालिंदी ने शादी से इनकार कर, उन बच्चियों के लिए एक राह खोली जो कम उम्र में ब्याह दी जाती हैं। रेखा के इस साहस के बाद, निर्धन परिवारों से सम्बन्ध रखने वाली इसी जिले की रुखसाना खातून, सकीना खातून, अफसाना और सुमित महतो जैसी कई लड़कियों ने शादी से इनकार कर दिया। इन सभी की उम्र 11 से 13 साल के बीच की थी। 12 वर्षीय अफसाना ने न केवल अपना विवाह रुकवाया बल्कि अपनी सहेलियों के साथ मिलकर जिले में लगभग 40 लड़कियों को बाल विवाह से बचाया। झारखण्ड, पुरुलिया जिले (पश्चिम बंगाल) की ही भाँति छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव और हरियाणा के करनाल में नन्ही बच्चियों ने बाल विवाह के खिलाफ मुहिम शुरू की। 'माँ बल्लेश्वरी किशोरी बालिका' नामक समूह, राजनांदगाँव जिले में घर-घर जाकर बाल विवाह रोकने के लिए जनजागृति उत्पन्न कर रहा है।

बाल विवाह के अलावा, खुले में शौच की प्रथा का महिलाएँ पुरजोर तरीके से विरोध कर रही हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि खुले में शौच की प्रथा सशक्तीकरण की अवधारणा पर कुठाराघात है। इसका सम्बन्ध स्त्री के स्वास्थ्य के साथ ही साथ उसके सम्मान के साथ भी जुड़ा हुआ है और यही कारण है कि देश के सुदूर अंचलों से इसके विरोध में स्वर उठ रहे हैं।

छत्तीसगढ़ के पिछड़े इलाके से आने वाली जानकीबाई ने साल 2011 में अपने गाँव के लिए हर घर में शौचालय निर्माण शुरू करवाया और साफ-सफाई की आदर्श व्यवस्था स्थापित की। उनके इस कार्य के लिए उन्हें ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सम्मानित किया। 2012 में मध्य प्रदेश के रतनपुर गाँव की एक महिला ने अपने विवाह के दो दिन बाद पति का घर इसलिए छोड़ दिया क्योंकि घर में शौचालय नहीं था।

यह समस्त उदाहरण इस ओर इशारा कर रहे हैं कि भारतीय महिलाएँ जागरूक हुई हैं और सामाजिक चेतना का स्तर उनमें बड़ा है। राष्ट्रीय परिवार सर्वेक्षण (IV) के आँकड़े इस बात की पुष्टि करते दिखते हैं। इस सर्वेक्षण से पता चला है कि 18 साल या उससे कम उम्र में बेटियों के विवाह के मामलों में गिरावट आई है। युवतियों की शादी अब 20 से 24 के मध्य हो रही है जबकि एनएफएचएस के 2005-06 में हुए तीसरे सर्वेक्षण के मुताबिक 40 प्रतिशत लड़कियों की शादी 18 साल या उससे कम उम्र में हो जाती थी। इस सर्वेक्षण के अनुसार, बिहार में 60 प्रतिशत से अधिक बेटियों का विवाह अब 24 से 25 साल की उम्र में हो रहा है। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया क्योंकि बिहार में बीते दस सालों में साक्षरता दर में दस प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। इसी तरह हरियाणा में भी बेटियों के विवाह की आयु में सुधार आया है। एनएफएचएस (IV) के आँकड़ों के अनुसार हरियाणा में 18 साल से पहले विवाह करने वाली युवतियों की संख्या अब 19 प्रतिशत से भी कम रह गई है।

महिलाओं के पास स्वयं का बैंक खाता होना, उनकी सामाजिक चेतना का एक बड़ा सूचक है। बैंक खाता रखने वाली 15-49 आयु वर्ग की महिलाओं में भी वृद्धि दर्ज की गई है। 2005-06 के सर्वेक्षण (एनएफएचएस) में बिहार में यह प्रतिशत 8.2 था जो कि वर्तमान में बढ़कर 26.4 प्रतिशत हो गया है। महिलाओं के इस सशक्तीकरण में गोवा 82.8 प्रतिशत से देश के सभी राज्यों से आगे है। तमिलनाडु ने भी इस दिशा में आश्चर्यजनक रूप से सकारात्मक परिवर्तन किया है। यहाँ अपना निजी बैंक खाता रखने वाली महिलाओं का प्रतिशत 77 है जबकि एनएफएचएस 2005-06 के सर्वेक्षण में इनकी संख्या मात्र 15.9 प्रतिशत दर्ज की गई थी।

एनएफएचएस के चौथे सर्वेक्षण में जो सबसे सुखद परिणाम आए हैं, वह है, महिलाओं का घर या जमीन का मालिक होना। सभी राज्यों को पछाड़ते हुए बिहार महिलाओं की सम्पत्ति में 58.8 प्रतिशत से आगे है जबकि त्रिपुरा में यह प्रतिशत 57.3 है। इस सर्वेक्षण में यह बात भी सामने आई है कि अब घर के निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी ज्यादा होने लगी है। सर्वेक्षण के मुताबिक सिक्किम इस मामले में 95.3 प्रतिशत के साथ पहले स्थान पर है। यहाँ सबसे अधिक विवाहित महिलाएँ घर के निर्णयों में अपनी भागीदारी देती हैं। पश्चिम बंगाल में यह सशक्तीकरण अधिकतम 89.8 प्रतिशत दर्ज किया गया है जबकि एनएफएचएस-III में यह 70.2 प्रतिशत था।

एनएफएचएस-IV का सर्वेक्षण यह बताता है कि जिन राज्यों में साक्षरता स्तर बढ़ा है, वहाँ स्वास्थ्य, निर्णायक क्षमता और बाल विवाह, घरेलू हिंसा जैसी कुरीतियों में कमी आई है। जैसा कि बिहार में 2005-06 के सर्वेक्षण में साक्षरता दर 37 प्रतिशत थी, जो कि अब बढ़कर 49.6 प्रतिशत हो गई। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यह रहा कि जहाँ बिहार में बाल विवाह कम हुए, वहीं घरेलू हिंसा से पीड़ित 15-49 साल की विवाहित महिलाओं की संख्या 12 प्रतिशत घटी।

हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि 'शिक्षा' के बगैर स्त्री-सशक्तीकरण सम्भव नहीं। इसलिए यह हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम राज्य में बालिकाओं के शिक्षा के स्तर पर विस्तार से चर्चा करें।

राजस्थान में बालिका शिक्षा

शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला समाज में अपनी सशक्त,

समान तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका दर्ज करा सकती है। शिक्षा सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तीकरण के लिए पहला और मूलभूत साधन है। स्त्री शिक्षा के महत्त्व पर राधाकृष्णन आयोग ने कहा है–''स्त्रियों के शिक्षित हुए बिना किसी समाज के लोग शिक्षित नहीं हो सकते। यदि सामान्य शिक्षा स्त्रियों या पुरुषों में से किसी एक को देने की विवशता हो, तो यह अवसर स्त्रियों को ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने पर निश्चित रूप से वह उनके द्वारा अगली पीढ़ी तक पहुँच जाएगी।'' राधाकृष्णन आयोग का यह वक्तव्य अक्षरश: सत्य है। वह स्त्री जो परिवार की धुरी है, उसका साक्षर न होना किसी भी देश का दुर्भाग्य है और भारतीय स्त्रियों ने सदैव से ही हर संघर्ष के बावजूद शिक्षित होने के लिए स्वयं भरसक प्रयास किए हैं। जिस देश में मैत्रेयी, घोषा, अपाला, गार्गी व भारती जैसी विदुषियों की परम्परा रही है वहाँ मध्यकाल में स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार बन्द कर दिए गए थे। तब से लेकर आज तक महिलाएँ अपनी ऐतिहासिक प्रस्थिति को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही हैं।

भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति के विभिन्न पड़ावों की हमने अध्याय के प्रथम भाग में ही चर्चा कर ली थी अब हम यह जानेंगे कि राजस्थान में बालिका शिक्षा की क्या स्थिति रही है?

राजस्थान में बालिका शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– राज्य में मध्यकाल में बालिका शिक्षा का जो अवसान हुआ वह राज्य के संवेदनशीलअ ैरब ुद्धिजीवील ेागके ि लएब हुतप ेाड़ादायकथ ाअ ैर इसलिए उन्नीसवीं सदी के मध्य में बालिका शिक्षा के प्रयास आरम्भ हो गए। स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा के लिए जो प्रारम्भिक प्रयास हुए, उसमें ब्रिटिश शासनक ास कारात्मकस हयोगन हींथ इ सकाक ारणभ ैस् पष्टथ ा। ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा के जो भी प्रयास किए वह अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में निचले स्तर पर कार्य करने हेतु वर्ग का निर्माण करने के लिए किए। उस शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान की खोज न होकर, अंग्रेजी भाषा के जानकारों की ऐसी फौज खड़ी करनी थी जो उनके आला अफसरों के मातहत के रूप में काम कर सके।

राज्य में, तत्कालीन अजमेर (मेरवाड़ा) जिले में 1861 में ब्यावर और 1863 में अजमेर में वर्नाकुलर बालिका विद्यालय खुले। इन स्कूलों में मूलत: ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती थी। 1893 तक स्कूल खोले जाने और नगण्य उपस्थिति के कारण बन्द किये जाने का सिलसिला चलता रहा।

अंग्रेजी सरकार के बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक रुख के कारण 1878 से गैर सरकारी स्कूल खोले जाने लगे। अंग्रेजों ने तत्कालीन जोधपुर व अलवर राज्यों में इन स्कूलों पर प्रतिबिंध लगा दिये और कहीं अनुदान देने से मना कर दिया। इन तमाम अवरोधों के बीच 4 फरवरी, 1914 में अजमेर में 'श्री सावित्री कन्या पाठशाला' खुली। जिसके संस्थापक श्रीमती रामप्यारी चन्द्रिका तथा उनके पति लालजी श्रीवास्तव थे। दो अध्यापिकाओं तथा 15 छात्राओं के साथ इस शिक्षण संस्था का आरम्भ हुआ था। अंग्रेज प्रशासित अजमेर-मेरवाड़ा प्रान्त से पूर्व तत्कालीन बीकानेर राज्य में 1886-87 में पहला प्राथमिक स्कूल खुला था। 1889-90 तक यहाँ 39 लड़कियाँ और 1896-97 में महाजन वर्ग की 70 लड़कियाँ पढ़ रही थीं। इस स्कूल में सिलाई व हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी।

महिला शिक्षा को लेकर जोधपुर के राजा कुमार सरदार सिंह संवेदनशील थे। उन्होंने 1866 में ह्यूसन गर्ल्स स्कूल खोला। 1913 तक यहाँ 136 छात्राएँ थीं। 1990 में भरतपुर में भी एक स्कूल खोला गया परन्तु जैसलमेर में 1930 तक एक भी बालिका विद्यालय नहीं था।

1921 के जनगणना सर्वेक्षण में स्कूलों के माध्यम से स्त्री शिक्षा की स्थिति स्पष्ट होती है। राज्य में यद्यपि 46,59,493 महिला जनसंख्या थी तथापि इसमें 18,851 ही साक्षर थीं। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में विभिन्न राज्यों की 'प्रशासनिक रिपोर्ट' में स्त्री शिक्षा का अनुपात .01 प्रतिशत से भी कम बताया गया।

1944 में जयपुर शहर में महारानी कॉलेज की नींव, श्रीमती सावित्री भारतीय के अथक प्रयासों से रखी गयी।

स्वतंत्रता से पूर्व मेवाड़ अंचल में भैरूलालजी गेलडा ने 1916 में 'राजस्थान महिला विद्यालय' की स्थापना की जो कि महिला विकास की दिशा में एक क्रान्तिकारी पहल थी। 1916 में स्थापित इस विद्यालय ने 1944 में हाईस्कूल का रूप लिया। 1954 में यहाँ स्नातक स्तर की शिक्षा भी प्रारम्भ हो गई। 1943 में संस्था से मॉन्टेसरी शाला को भी जोड़ा गया तथा 1976में श्री दुर्गावत कला एवं औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र आरम्भ हुआ।

राज्य में बालिका शिक्षा के इतिहास में, एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव वह था जब अक्टूबर, 1935 में वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना हीरालाल शास्त्री द्वारा हुई। छह लड़कियों तथा बिना किसी आधारभूत संसाधनों के मिट्टी के कमरों में इस संस्था में शिक्षा का कार्य आरम्भ हुआ। विभिन्न स्तरों से गुजरते हुए 1983 में इसको विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ।

बालिका विद्यालय खोलने के साथ-साथ बालिका शिक्षा की जनजागृति के लिए राज्य में स्वतंत्रता से पूर्व उल्लेखनीय प्रयास हुए। सन् 1935 में दयाशंकर श्रोत्रिय ने गाँधीदर्शन के प्रचार के उद्देश्य से चरखा द्वादशी का 12 दिवसीय आयोजन किया। इसी सभा में नारी शिक्षा की संस्था प्रारम्भ करने की घोषणा की तथा 10 नवम्बर, 1935 को इसी घोषणा के परिणामस्वरूप 'महिला मण्डल' की स्थापना हुई। इस मण्डल के अन्तर्गत महिला शिक्षा की अलख जगी। इस मण्डल का अभूतपूर्व कदम यह था कि स्त्रियों के लिए रात्रि शालाएँ आरम्भ हुईं। इसमें अध्ययन और अध्यापन दोनों ही नि:शुल्क किए गये। उदयपुर के तत्कालीन ग्यारह वार्डों में रात्रि शालाएँ चलने लगीं। इतना ही नहीं, 24 फरवरी 1941 में महिला पुस्तकालय और वाचनालय का भी आरम्भ हुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान में बालिका शिक्षा की स्थिति– स्वतंत्रता के पश्चात् देश की केन्द्र प्राथमिकताओं में बाल शिक्षा का विकास था। राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में जहाँ 2.29 करोड़ रुपए का प्रावधान रखा गया, वहीं द्वितीय योजना में यह

4.88 तथा तृतीय में 8.05 करोड़ हुआ और उसके पश्चात् विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सरकार ने निरन्तर बालिका शिक्षा की प्रगति के लिए प्रयास किए जिसका परिणाम यह रहा कि नामांकन में प्राथमिक स्तर पर उल्लेखनीय वृद्धि हुई है तथापि वर्ष 2010-11 में प्राथमिक स्तर पर जहाँ बच्चियों का प्रतिशत 45.9 था, वहीं लड़के 54.1 प्रतिशत थे। 11-14 वर्ष की आयुवर्ग में, ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल बीच में छोड़ देने वाली बालिकाओं का प्रतिशत, वर्ष 2009 में 5.56 प्रतिशत, बालकों की तुलना में 12.55 प्रतिशत बालिकाओं का रहा, जो कि लैंगिक भेद की स्पष्ट तस्वीर दिखाता है।

सर्वेक्षण बताते हैं कि महिला शिक्षिकाओं की वृद्धि के सकारात्मक परिणाम आए। इससे बालिकाओं के विद्यालय नामांकन में बढ़ोत्तरी हुई। वर्ष 2003-04 और 2011 के बीच यूँ तो महिला शिक्षिकाओं के अनुपात में 24.18 प्रतिशत से 30.15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, परन्तु वे विद्यालय जिनमें कम से कम एक महिला शिक्षिका है, की संख्या में 64.99 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

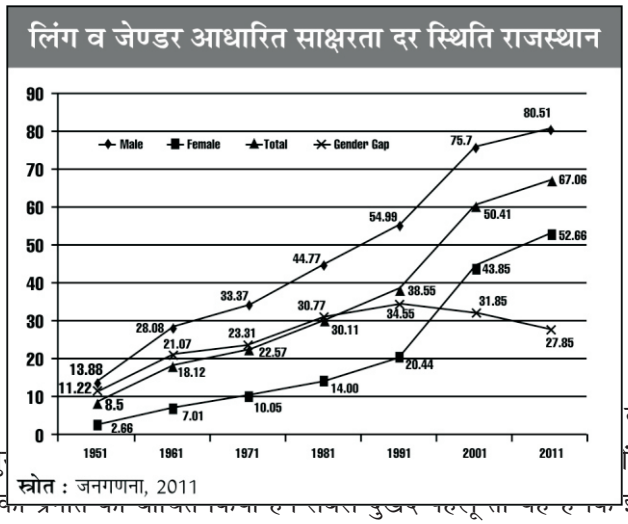

लिंग व जेण्डर आधारित साक्षरता दर स्थिति राजस्थान

स्रोत : जनगणना, 2011

की

प्रमु ... ं ने

इनके ... इस भेदभाव को बच्चियों को अपने घर में, अपने अभिभावकों के बीच देखना पड़ता है। पोषण से लेकर मूलभूत आवश्यकताओं तक के लिए माता-पिता द्वारा बच्चियों और बेटों में अन्तर किया जाता है। बाल विवाह और बालिकाओं द्वारा शारीरिक श्रम, राज्य की बालिकाओं की निरन्तर शिक्षा में बाधक तत्त्व है और यही कारण है कि मौजूदा योजनाओं और राज्य सरकार के बालिका शिक्षा के लिए विभिन्न कार्यक्रमों से बालिकाएँ उस अनुपात में लाभान्वित नहीं हो रही हैं, जो कि अपेक्षित थीं। यह राज्य के लिए चिन्ता का विषय है कि राज्य की महिला साक्षरता दर केवल 52.66 प्रतिशत है, जो भारत के कई राज्यों से ही कम नहीं है, अपितु भारत की महिला साक्षरता दर के राष्ट्रीय औसत 65.54 प्रतिशत से भी कम है। हम यह कहें कि स्थिति पूर्णत: निराशाजनक है तो यह गलत होगा, प्रयासों को सफलता मिलती है इसलिएअ ।नेव ।लेस मयम ेस रकारक ।य ।ेजनाओंक ।स कारात्मक परिणति होगी ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए।

राज्य में बालिका शिक्षा के सरकार की योजनाएँ–

यह सर्वविदित और सार्वभौमिक सत्य है कि शिक्षा मानव विकास का मूल मंत्र है। चूँकि मध्यकाल और स्वतंत्रता पूर्व बालिका शिक्षा को लेकर बहुआयामी प्रयास सरकारी स्तर पर नहीं हुए इसलिए बालिका शिक्षा का विकास तीव्र गति से नहीं हो पाया। इस सत्य को स्वीकारते हुए राज्य और केन्द्र ने सम्मिलित रूप से अनेकानेक प्रयास किए जिससे बालिकाएँ शिक्षित हो सकें। राजस्थान सरकार द्वारा कुछ प्रमुख योजनाओं को विगत दशकों में बालिका शिक्षा के लिए लागू किया गया, जिनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं–

(1) विशेष योग्यजन छात्रवृत्ति योजना– विशेष योग्यजन छात्रवृत्ति योजना का आरम्भ वर्ष 1981 में हुआ। राजकीय एवं मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में नियमित अध्ययनरत विशेष योग्यजन छात्र/छात्राएँ, जिनके परिवार की वार्षिक आय 2.00 लाख रुपये से अधिक न हो, ऐसे परिवारों के विशेष योग्यजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति व उत्तर मैट्रिक कक्षाओं में सामान्य व अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी के विशेष योग्यजन विद्यार्थियों को फीस पुनर्भरण की सुविधा दी जा रही है।

(2) गार्गी पुरस्कार (जूनियर योजना)– यह योजना वर्ष 1998में आरम्भ हुई। इस योजना के अन्तर्गत डाईट द्वारा आयोजित कक्षा 8 परीक्षा में पंचायत समिति एवं जिला मुख्यालय पर सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली बालिकाओं को कक्षा 9 एवं 10 में नियमित अध्ययनरत रहने पर प्रतिवर्ष 1000 रुपये एवं प्रमाण पत्र देकर पुरस्कृत किया जाता है।

(3) शारीरिक असमतायुक्त बालिकाओं हेतु सबलता पुरस्कार– 2005-06 में आरम्भ की गई इस योजना में शारीरिक रूप से विकलांग एवं मूक बधिर तथा नेत्रहीन बालिकाएँ जो राजकीय विद्यालयों में कक्षा 9 से 12 में नियमित रूप से अध्ययनरत हैं, को 2000 रुपये की आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

(4) कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय (केजीबीवी)– 2005-06 में इस योजना की शुरुआत हुई। वर्तमान में राज्य में कुल 200 केजीबीवी संचालित हैं। जिनमें से 186 शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े ब्लॉकों में तथा 14 कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालय अल्पसंख्यक बाहुल्य शहरी क्षेत्रों में संचालित हैं।

केजीबीवी में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक तथा बीपीएल परिवारों को शिक्षा से वंचित बालिकाओं को उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6, 7 एवं 8) की गुणवत्तायुक्त शिक्षा आवासीय सुविधा सहित नि:शुल्क प्रदान की जाती है।

(5) ग्रामीण बालिकाओं के लिए ट्रांसपोर्ट वाउचर की योजना– यह योजना सन् 2007-08में आरम्भ की गई। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के राजकीय माध्यमिक एवं राजकीय उच्च

माध्यमिक में कक्षा 9 से 12 में अध्ययनरत छात्राओं को उनके निवास स्थान से विद्यालय तथा विद्यालय से निवास स्थान तक आने-जाने के लिए ट्रांसपोर्ट वाउचर दिया जाना है। इस योजना के अन्तर्गत निवास स्थान से विद्यालय की दूरी 5 किमी. से अधिक होनी चाहिए तथा न्यूनतम पाँच बालिकाओं का समूह होना आवश्यक है।

(6) 75 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने वाली छात्राओं के लिए प्रोत्साहन योजना– 2008-09 में प्रारम्भ हुई इस योजना में कक्षा 12 में 75 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाली बालिकाओं को एकमुश्त 5,000 रुपये का प्रोत्साहन पुरस्कार राज्य सरकार की ओर से दिया जाता है।

(7) मुख्यमंत्री उच्च शिक्षा छात्रवृत्ति योजना– यह योजना सन् 2012 में प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत अल्प आय वर्ग के प्रतिभावान विद्यार्थियों हेतु छात्रवृत्ति प्रारम्भ की गई है। जिसमें राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की 12वीं की परीक्षा में 60 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त किए हों तथा जो कोई अन्य छात्रवृत्ति प्राप्त न कर रहे हों, उन्हें प्रतिमाह 500 रुपए और अधिकतम 5,000 रुपए वार्षिक, अधिकतम 5 वर्षों के लिए दिए जाते हैं।

(8) छात्राओं को नि:शुल्क साइकिल वितरण योजना– समस्त राजकीय विद्यालयों में शैक्षिक सत्र वर्ष 2015-16से कक्षा 9 में नवीन प्रवेश लेने वाली समस्त शहरी व ग्रामीण छात्राओं को साइकिल प्रदान करने की योजना का उद्देश्य, बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना है।

राज्य सरकार द्वारा बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं परन्तु इसके बावजूद भी यह आवश्यक हो जाता है कि बालिकाओं के प्रति गहरे पैठ में कहीं हमारे भीतर जो भेदभाव की भावनाएँ अभी भी बैठी हुई हैं, उसको हम समूल नष्ट कर दें क्योंकि बिना बालिकाओं के शैक्षणिक उन्नयन के हम, देश और समाज के विकास की कल्पना नहीं कर सकते।

बाल श्रम के विविध आयाम, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण–

बाल श्रम एक ऐसी समस्या है जिसका सामना सम्पूर्ण विश्व कर रहा है। बच्चों को भविष्य का निर्माणकर्त्ता स्वीकार किया गया है। यूनीसेफ अपनी रिपोर्टों में बच्चों को महत्त्वपूर्ण संसाधन के रूप में स्वीकार कर इस बात पर बल देता रहा है कि मानवीय संसाधनों के निवेश या मानव संसाधन निर्माण की प्रत्येक दीर्घकालीन योजना बच्चों से प्रारम्भ की जानी चाहिए लेकिन वास्तविकता के धरातल पर ऐसा नहीं हो पा रहा है। आज भी एक बड़ी संख्या में बच्चे मजदूरी करके अपने परिवार के लिए जीविकोपार्जन कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल श्रम आयोग के अध्यक्ष होमर फॉक्स ने बाल श्रम को परिभाषित करते हुए कहा था, ''बच्चों द्वारा किया जाने वाला कोई भी कार्य जिससे उनके पूर्ण शारीरिक विकास और न्यूनतम वांछित स्तर की शिक्षा के अवसरों या उनके लिए आवश्यक मनोरंजन में बाधा उत्पन्न होती है।'' (श्रम जाँच समिति मुख्य रिपोर्ट, 1946)

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 16 वर्ष या उससे कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अमेरिका कानून के अनुसार 12 वर्ष या कम आयु तथा इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देशों में 13 वर्ष या कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रमिकों की श्रेणी में रखा गया है। भारतीय संविधान के अनुसार 5 से 14 वर्ष के बीच के बालक/बालिका जो वैतनिक श्रम करते हैं या श्रम द्वारा पारिवारिक कर्ज चुकाते हैं, बाल श्रमिक है।

बालश्रम का उद्‌भव

बालश्रम का उद्‌भव पूँजीवादी वर्ग द्वारा न्यूनतम निवेश पर अधिकतम लाभ की मानसिकता की परिणति थी चूँकि बच्चे न्यूनतम राशि में श्रम के लिए सहजता से उपलब्ध होते हैं, इसलिए उन्हें श्रम में लगाया गया। इन बाल श्रमिकों की स्थिति बदतर थी, उनका शारीरिक और मानसिक शोषण होता था। यह अमानवीय प्रथा, प्रथम बार 1853 में प्रकाश में तब आई जब इंगलैण्ड में चार्टिस्ट आंदोलन ने विश्व का ध्यान इस ओर आकृष्ट करवाया। यह वह समय था जब साहित्यकारों ने भी इस पर लिखकर विश्व को जागृत किया। इन साहित्यकारों में से प्रमुख विक्टर ह्यूगो, आस्कर बाइन्ड आदि थे, जिन्होंने बालश्रम को गम्भीरता प्रदान की।

बालश्रम की प्रवृत्ति को समाजशास्त्रियों ने मुख्यत: चार सिद्धान्तों में बाँटा है–

(i) नवपुरातनवादी सिद्धान्त– यह सिद्धान्त कहता है कि समाज बच्चों को उपयोग व निवेश की सामग्री मानता है और इसलिए उनके श्रम का उपयोग अपने स्वार्थहित के लिए करता है। ह्यूज एच.जी. लिविस, एम.टी. फेन, टी. अख्तर, डी.सी. काल्डवेल आदि विद्वान इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं।

(ii) समाजीकरण का सिद्धान्त– जी. रोजर्स, स्टेंडिंग जी. मेयर जैसे समाजवैज्ञानिक ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बाल श्रम को पारिवारिक प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। कृषि, घरेलू उद्योग आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

(iii) श्रम बाजार के विखण्डन का सिद्धान्त– अविकसित देशों में पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था ने श्रम बाजार को दो हिस्सों में विभक्त किया है। बड़ा किसान तथा छोटा किसान। बाजार का, मालिक-श्रमिक सम्बन्धों के आधार पर यह विभाजन, श्रम बाजार के विखण्डन के सिद्धान्त को बताता है। इस सिद्धान्त को डी.एम. गोर्डन, सी. केट तथा एडवर्ड्स जैसे विद्वानों ने मान्यता दी है।

(iv) मार्क्सवादी सिद्धान्त– मार्क्स का विचार था कि बाल श्रम पूँजीवादी व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग है। नवीन तकनीक ने अकुशल तथा सस्ते श्रमिकों की माँग को बढ़ाया है। बेरोजगारी और जीविकोपार्जन के

लिए बच्चे औद्योगिक श्रमिकों के दल का हिस्सा बन जाते हैं।

बालश्रमिकों के आँकड़े– भारत में 2011 के ताजा आँकड़े हमें बताते हैं कि 5 से 9 साल की आयु के 25.33 लाख बच्चे तीन महीने से लेकर 12 महीने तक श्रम करते हैं। जनगणना 2011 के मुताबिक भारत में 5 से 14 वर्ष के आयुवर्ग में कुल 25.96 करोड़ बच्चे हैं, जिनमें से 1.01 करोड़ श्रम कर रहे हैं। राज्यवार अगर बालश्रमिकों की संख्या का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि उत्तर प्रदेश (21.76 लाख), बिहार (10.88 लाख), राजस्थान (8.48 लाख), महाराष्ट्र (7.28 लाख) और मध्य प्रदेश (7 लाख) समेत पाँच प्रमुख राज्यों में 55.41 लाख बच्चे श्रम में लगे हुए हैं। एक बाल अधिकार संगठन का दावा है कि देश में बाल श्रम से हर वर्ष 1.20 लाख करोड़ रुपए का काला धन पैदा हो रहा है। बचपन बचाओ आंदोलन की 'कैपिटल करप्शन : चाइल्ड लेबर इन इंडिया' नामक रिपोर्ट ने यह खुलासा किया है कि देश में 6 करोड़ बाल श्रमिक हैं।

बालश्रम का विस्तार–

बालश्रमिकों के व्यवसाय को मुख्य तौर पर चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–(अ) कृषि (ब) निर्माण (स) व्यापार एवं (द) घरेलू एवं वैयक्तिक सेवा।

बालश्रम के सबसे ज्यादा दोष असंगठित उद्योगों और कारखानों में पाये जाते हैं जहाँ ज्यादातर बच्चे काम करते हैं। अनेक ऐसे उद्योग हैं जहाँ बच्चे अपने जीवन की कोमलता खो रहे हैं–

- शिवाकाशी (तमिलनाडू) में दियासलाई उद्योग
- जयपुर (राजस्थान) में बहुमूल्य पत्थर पॉलिश उद्योग,
- टाइल उद्योग–जग्गमपेट (आंध्रप्रदेश),
- मत्स्य उद्योग–केरल,
- हथकरघा उद्योग–तिरुवनंतपुरम्, विरुपुर, कांजीपुरम् एवं चिंनालमपट्‌टी,
- बीड़ी उद्योग–त्रिशूर (केरल), तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडू),
- कालीन उद्योग–भदोही, मिर्जापुर पट्‌टी क्षेत्र (उत्तर प्रदेश), राजस्थान एवं जम्मू कश्मीर,
- काँच उद्योग–फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश),
- चीनी मिट्‌टी के बर्तन–खुर्जा (उत्तर प्रदेश),
- ताला उद्योग–अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)।

बालश्रम के कारण–

अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर बालश्रम रोकने के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं। इन पर रोक लगाने के लिए अनेक सम्मेलनों से लेकर बहसों का सिलसिला कायम है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यहाँ उपजता है कि क्यों, विश्व मानचित्र में आर्थिक सुदृढ़ीकरण की मिसाल बन चुका भारत, नन्हें बच्चों के 'श्रम के दोहन' का अपराधी बना बैठा है। सामान्यत: कुछ कारण ऐसे हैं जिनके कारण बालश्रम के समाप्ति के अनेकानेक प्रावधान होने के बावजूद भी बालश्रम देश में आज भी व्याप्त है–

(i) आर्थिक विवशता– गरीबी जो कि विकासशील देशों में व्यापक रूप से फैली हुई है, इस समस्या की प्राथमिक जड़ है। श्रम बाजार में बाल श्रमिकों की माँग है इसलिए अभिभावक, अपने बच्चों को उद्योगों से लेकर कृषि कार्य हेतु श्रम करने के लिए भेज देते हैं।

(ii) परिवार का बड़ा आकार होना– ऐसे परिवार जहाँ सदस्यों की संख्या अधिक होती है वहाँ एक व्यक्ति की आमदनी से परिवार चलाना कठिन और दुष्कर कार्य होता है ऐसी स्थिति में बच्चों की आय परिवार की आजीविका का स्रोत बनती है।

(iii) सस्ता श्रम होना– अनेक शोध यह स्पष्ट करते हैं कि जितना नियोक्ता एक वयस्क श्रमिक पर खर्च होता है, उसकी तुलना में मामूली सी रकम चुकाकर वह बाल श्रमिकों से कार्य लेता है। यह विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि बालश्रमिकों को मात्र 20 रुपए प्रतिदिन खर्च करके नियोक्ता लाखों का लाभ कमा रहे हैं, वहीं वयस्कों की यूनियन, उनके अधिकारों के प्रति सजगता और शोषण के विरुद्ध आवाज से भी उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

(iv) सामाजिक ढाँचा– भारतीय समाज में विशेषकर ग्रामीण परिवेशम ेंअ ल्पायुम ेंि ववाहह ोज ातेह ैं,ि जसकेच लतेप ारिवारिक दायित्वों का भार, गरीबी तथा धन की जीविकोपार्जन हेतु आवश्यकता भी बालश्रम का कारण बनती है।

बालश्रम के दुष्प्रभाव–

बालश्रम का प्रत्यक्ष रूप से बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। जहाँ माचिस एवं आतिशबाजी उद्योगों में लगे बालश्रमिक पोटेशियम क्लोरेट, फॉस्फोरस एवं जिंक ऑक्साइड जैसे विषैले एवं खतरनाक रसायनों के बीच काम करते हैं, वहीं मेघालय की निजी खदानों में बच्चे 90 सेंटीमीटर व्यास के छोटे–छोटे गड्ढों में काम करते हैं। काँच उद्योग में लगे हुए बच्चे 700 डिग्री सेल्सियस के तापमान वाली भट्‌टी के इर्द–गिर्द काम करने को मजबूर हैं। इतनी विकट एवं वीभत्स दशाओं में काम करने के परिणामस्वरूप ये बाल श्रमिक टी.बी., कैंसर, साँस की बीमारी, चर्म रोग, फोटोबिया, दमा जैसी अनेक बीमारियों के शिकार हो रहे हैं।

बालश्रम में संलग्न बच्चों के सिर्फ स्वास्थ्य को ही हानि नहीं पहुँचती बल्कि साथ ही साथ उनके सामाजिक एवं मानसिक विकास को भी क्षति पहुँचती है। मैरिल का मानना है कि आय कम होने के कारण बच्चों को भी काम करना पड़ता है जिससे उनकी शिक्षा नहीं हो पाती। गरीबी के कारण इन बाल श्रमिकों की अनेक इच्छाएँ पूरी नहीं होने से वे अपराधों का आश्रय लेते हैं। सभी मनोवैज्ञानिक व अपराधशास्त्री बालश्रम का बाल अपराध से घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं।

बालश्रम के मुद्दे पर सरकार की नीति–

बालश्रम समिति– सर्वप्रथम 1979 में सरकार ने बालश्रम की

समस्या के अध्ययन और उससे निपटने के लिए उपाय सुझाने हेतु गुरुपादस्वामी समिति नामक समिति का गठन किया था। समिति ने विस्तार से समस्या का परीक्षण किया और कुछ दूरगामी सिफारिशें की। समिति का विचार था कि जब तक देश में गरीबी रहेगी तब तक बालश्रम को समूल नष्टक रनास हजन हींहै इ सलिएवै धानिकप्रावधानोंके म ाध्यमोंसे बालश्रम को पूर्णतया समाप्त करने का प्रयास व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं होगा। समिति का यह विचार भी था कि इन परिस्थितियों में खतरनाक क्षेत्रों में बालश्रम पर प्रतिबंध लगाना और अन्य क्षेत्रों में कार्यकारी परिस्थितियों को विनियमित करना और उनमें सुधार लाना ही एकमात्र विकल्प है। समिति ने सिफारिश की कि कामकाजी बच्चों की समस्याओं से निपटने के लिए विविध-नीति दृष्टिकोण की जरूरत है। गुरुपादस्वामी समिति की सिफारिशों के आधार पर, 1986में बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम लागू किया गया। इस दृष्टिकोण के अनुरूप 1987 में बालश्रम पर एक राष्ट्रीय नीति तैयार की गई। बालश्रम समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर विशेष बल दिया कि काम पर लगे बच्चों की समस्याओं से निपटने के लिए एक बहुल नीति दृष्टिकोण अपनाये जाने की आवश्यकता है। समिति ने सिफारिश की कि बालश्रम को रोकने तथा उनका नियमन करने के लिए वर्तमान में जो कानून प्रचलित हैं उसके स्थान पर एक विस्तृत तथा व्यापक कानून बनाये जाने की आवश्यकता है तथा किसी भी कार्य में बच्चों के प्रवेश की न्यूनतम आयु को बढ़ाकर 15 वर्ष कर दिया जाना चाहिए।

सितम्बर, 1990 में श्रम मंत्रालय तथा यूनिसेफ की सहायता से राष्ट्रीय श्रम संस्था में एक बालश्रम सेल खोला गया है जिसका उद्देश्य बालश्रमिकों के सम्बन्ध में जानकारी एकत्र करना तथा उनकी मुक्ति हेतु प्रयास करना है।

बाल श्रम उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा विधायी नीति

रोकथाम–

- बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986, 18 व्यवसायों और 65 प्रक्रियाओं में 14 वर्ष की आयु से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है।
- अधिनियम के तहत अनुसूची में और व्यवसायों तथा प्रक्रियाओं को शामिल करने का परामर्श देने के लिए एक तकनीकी सलाहकार समिति का गठन किया गया है।
- अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों के उल्लंघन में किसी भी बच्चे को नियोजित करने वाला कोई भी व्यक्ति कारावास सहित दंड का भागी होगा, जिसकी अवधि तीन महीने से कम नहीं होगी, पर जो एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है या जुर्माना जो 10,000 रुपए से कम नहीं होगा लेकिन जिसे 20,000 रुपए तक बढ़ाया जा सकता है या कारावास तथा जुर्माना, दोनों सजा पा सकता है। (धारा 14)

प्रावधान– भारत के संविधान में निम्नलिखित अनुच्छेदों के द्वारा बाल श्रमिकों को उनके नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाने हेतु राष्ट्र द्वारा प्रयास किया गया है–

अनुच्छेद 23–मानव दुर्व्यवहार एवं बलात् श्रम का प्रतिरोध– इस अनुच्छेद के माध्यम से मानव का दुर्व्यवहार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम प्रतिबंधित किया गया है।

अनुच्छेद 24–कारखानों में बालकों के नियोजन का प्रतिबंध– अनुच्छेद 24 में, चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जायेगा।

कारखाना एक्ट 1922– इस एक्ट के अनुसार 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बच्चा माना गया, काम करने की अवधि (आधे घंटे के विश्राम मध्यान्तर सहित) 6 घंटे नियत की गयी है।

कारखाना एक्ट 1948– 14 वर्ष की आयु होने पर ही किसी व्यक्ति को काम पर रखा जा सकता है। काम के घण्टे 4½ मध्यान्तर सहित 5 घंटे कर दिए गये।

खान एक्ट 1962– इस एक्ट के तहत 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खान में किसी भी भाग में चाहे यह भूमिगत हो या खुले में खुदाई का कार्य हो, काम पर रखना मना किया है।

भिक्षावृत्तिए क्ट,ब ागानश्र ामिकए क्ट1 951 के अन्तर्गत रोजगार के लिए न्यूनतम आयु 22 वर्ष रखी गयी है।

बाल श्रमिक (निषेध तथा नियमन) अधिनियम 1986– इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह है कि कुछ रोजगारों में उन बालकों पर काम पर लगाने से रोका जाये जिन्होंने 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है तथा अन्य रोजगारों में बालकों की कार्य करने की दशाओं का नियमन किया जाये। अधिनियम में इस बात का भी प्रावधान है कि कोई भी बालक रात्रि के 7 बजे से प्रात: 8बजे के बीच काम पर नहीं लगाया जाये।

इस अधिनियम में पारिवारिक काम-धंधे या मान्यता प्राप्त स्कूल पर आधारित गतिविधियों को छोड़कर बच्चों से निम्न तरह के व्यवसायों में काम करने की मनाही है–

(क) रेलवे द्वारा या माल या डाक का यातायात,
(ख) रेलवे परिसर में राख में से कोयले के टुकड़े बीनना, राख के गड्ढों की सफाई,
(ग) रेलवे में खान-प्रबन्ध की संस्थाएँ,
(घ) रेलवेस् टेशनोंय ार्लल ाइनोंके ब ाहुतप ासि नर्माणसे सम्बन्धित कार्य,
(ङ) बन्दरगाह।

निम्नलिखित उद्योगों में भी बालकों को काम पर लगाना प्रतिबंधित है–बीड़ी बनाना, कालीन बुनना, सीमेंट बनाना व उसे बोरियों में भरना, कपड़ों की छपाई, रंगाई, अभ्रक काटना तथा उसे कूटना, दियासलाइयाँ बनानात थाा विस्फोटव अ ातिशबाजीक ास ामानतै यारक रना,स ाबुन बनाना, भवन निर्माण उद्योग, चमड़ा रंगना तथा ऊन साफ करना।

बालश्रम (निषेध एवं नियमन) संशोधन–म ई,2 015क ो बालश्रम अधिनियम (निषेध एवं नियमन) 1986 को संशोधित किया गया। इस संशोधन के पश्चात् बच्चों को सिर्फ जोखिम रहित पारिवारिक उपक्रम, टेलीविजन सीरियल, फिल्म, विज्ञापन और खेल की गतिविधियों (सर्कस को छोड़कर) से जुड़े कामों में ही रखा जा सकता है। इसके साथ एक शर्त है कि बच्चों से ये काम स्कूल की अवधि के बाद ही कराए जायेंगे।

बालश्रम एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण एवं निराकरण–

बालश्रम के सम्बन्ध में, अनेक संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद, बालश्रम आज भी भारत में व्याप्त है। यह देश के संवेदनशील वर्ग के लिए चिन्ता का विषय है। आमतौर पर 'बालश्रम' का प्रश्न उठते ही कानून की धीमी गति और प्रशासन की ढिलाई की ओर अंगुली उठ जाती है पर क्या कानून महज मात्र से इस समस्या से मुक्ति मिल सकती है या फिर बाल श्रमिकों का भविष्य सुरक्षित हो सकता है? 1990 के दशक में अमेरिका ने जब नेपाल से कालीन के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया था तो कालीन व्यवसाय से जुड़े सैकड़ों बच्चे अशोभनीय कार्यों से जुड़ गए और कुछ इसी तरह बांग्लादेश के कपड़ा उद्योग में संलग्न बच्चों ने पत्थर तोड़ने जैसे जोखिम भरे कार्य शुरू किये। यह तय है कि जब भी बच्चों को उनके कार्य से दूर करने की चेष्टा, उनमें जुड़े हुए पहलुओं को अनदेखा करके की जाएगीत ोउ सकेप रिणामन कारात्मकह ोंगे।क ानून-मात्रब नाद ेनस े बालश्रम की समस्या से नहीं निपटा जा सकता क्योंकि निर्धनता और परिवार का बड़ा आकार ऐसे दो कारण हैं जो नन्हें बच्चों को अनचाहा श्रम करने के लिए विवश करते हैं। महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि लगभग सभी बाल श्रमिकों को कार्य करने के लिए अपने अभिभावकों की सहमति प्राप्त होती है या इससे भी कहीं अधिक वे अपने अभिभावकों को आर्थिक संबलता देने के माध्यम बनते हैं। सच तो यह है कि बालश्रमिकों की आर्थिक एवं भावनात्मक विवशताएँ इतनी गहरी हैं कि उनके लिए आजीविका को ठुकराना मुश्किल है। दरअसल बालश्रम मुक्तभारत के लिए एक ऐसी कार्यनीति की आवश्यकता है जो निवारक, उपचारात्मक और पुनर्वासात्मक हो।

बुद्धिजीवी वर्ग का एक बड़ा तबका यह मानकर चलता है कि यदि बालश्रमिकों को शिक्षित कर दिया जाये तो बालश्रम की समस्या से निजात मिल सकती है परन्तु सच इससे परे है क्योंकि मात्र किताबी शिक्षा आर्थिक समस्याओं से जूझ रहे बच्चों के लिए रोजगार की गारंटी नहीं दे सकती, इसलिए आवश्यकता एक ऐसी रोजगारोन्मुखी कार्यक्रम की है जो शिक्षा के साथ-साथ किसी ऐसे शिल्प में बच्चों को पारंगत करे कि उनका भविष्य उज्जवल हो सके, परन्तु यह शिक्षा बिना किसी व्यवधान के चल सके, इसलिए जरूरी है कि इस अवधि में, उनके अभिभावकों को रोजगार दिलवाया जाए वरना वे अपनी आर्थिक विवशताओं का बोझ अपने बच्चों केक ंधेप रड ालद ेंगे।ब ालश्रमउ न्मूलनके ि लएज ागरूकताब ढ़ाने, सामुदायिक भागीदारिता, वैकल्पिक एवं सक्षम सामाजिक आर्थिक पुनर्वास की आवश्यकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु–

हमने इस अध्याय में भारत एवं राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना तथा राज्य में बालिका शिक्षा के बारे में जाना। इसके साथ हमने बालश्रम की समस्याओं को जाना। इनके महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को पुन: दोहराए जाने की आवश्यकता है–

- भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में नारी की मान प्रतिष्ठा को पुरुषों के समानान्तर ही स्वीकार किया गया था।
- मध्यकाल, स्त्रियों के सर्वस्व अधिकारों के हनन का काल था।
- राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज-सुधारकों ने स्त्रियों की प्रस्थिति के उन्नयन के लिए प्रयास किए।
- राजस्थान में मध्यकाल में बालविवाह, पर्दाप्रथा, कन्यावध जैसी प्रथाओं ने राज्य की महिलाओं को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया था।
- 1887 में 'वाल्टरकृत राजपूतहितकारिणी सभा' का गठन कर राज्य प्रतिनिधियों के प्रतिनिधित्व में, बहुपत्नी विवाह तथा विवाह की आयु तय करने के प्रतिबंध के प्रस्ताव पारित किए गए।
- राज्य सरकार के निरन्तर प्रयासों के चलते राज्य में विवाह की औसत आयु 19.7 वर्ष (AHS 2010-11 के अनुसार) तक बढ़ गई है।
- सन् 1993 में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को आरक्षण प्राप्त हुआ।
- एनएफएचएस (IV) के आँकड़ों के मुताबिक देश में 18 साल या उससे कम उम्र में बेटियों के विवाह के मामलों में गिरावट आई है। इस सर्वेक्षण के मुताबिक बैंक खाता रखने वाली 15-49 आयुवर्ग की महिलाओं में भी वृद्धि दर्ज की गई।
- वर्ष 2003-04 और 2011 के मध्य महिला शिक्षिकाओं के अनुपात में 24.18 प्रतिशत से 30.15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।
- राज्य की महिला साक्षरता दर केवल 52.66 प्रतिशत है जो कि भारत के कई राज्यों से ही कम नहीं है अपितु भारत की महिला साक्षरता दर के राष्ट्रीय औसत 65.54 प्रतिशत से भी कम है।
- भारत में 2011 के आँकड़े हमें बताते हैं कि 5 से 9 साल की आयु के 25.33 प्रतिशत बच्चे वर्ष में 3 माह से लेकर 2 माह तक श्रम करते हैं।
- भारतीय संविधान के अनुसार 5 से 14 वर्ष के बीच के बालक/बालिका जो वैतनिक श्रम करते हैं या श्रम द्वारा पारिवारिक कर्ज चुकाते हैं, बाल श्रमिक हैं।

- बालश्रम का कारण गरीबी, परिवार का बड़ा आकार, सस्ता श्रम तथा सामाजिक ढाँचा मुख्य रूप से है।
- 1986 में बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम लागू किया गया।
- मई, 2015 में बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम में संशोधन किया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ब्रह्म समाज की स्थापना किस वर्ष में हुई?
   (अ) 1828 (ब) 1820
   (स) 1819 (द) 1825
2. हिन्दू विवाह अधिनियम कब पारित हुआ?
   (अ) 1976 (ब) 1946
   (स) 1937 (द) 1955
3. किसकी अध्यक्षता में 'देश हितैषिणी सभा' की स्थापना की गई?
   (अ) महाराणा सज्जन सिंह
   (ब) महाराणा रतन सिंह
   (स) महाराणा जय सिंह
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
4. ऑल इंडिया वूमेन्स कॉन्फरेन्स की स्थापना किस सन् में हुई?
   (अ) 1929 (ब) 1920
   (स) 1919 (द) 1918
5. 1866में ह्यूसन गर्ल्स स्कूल किस राजा ने खोला था?
   (अ) महाराणा सज्जन सिंह
   (ब) राजा कुमार सरदार सिंह
   (स) महाराणा जय सिंह
   (द) महाराणा रतन सिंह
6. बाल श्रमिकों के व्यवसाय को मुख्य तौर पर कितने वर्गों में बाँटा गया है?
   (अ) पाँच (ब) चार
   (स) तीन (द) छः
7. मानव दुर्व्यवहार एवं बलात् श्रम का प्रतिरोध किस अनुच्छेद में किया गया है?
   (अ) अनुच्छेद 24 (ब) अनुच्छेद 23
   (स) अनुच्छेद 28 (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारतीय संस्कृति के किस काल में नारी की प्रतिष्ठा को पुरुषों के समानान्तर ही स्वीकार किया गया था?
2. के.एम. पणिक्कर की पुस्तक का नाम लिखें।
3. 'ब्रह्म समाज' की स्थापना किसने की थी?
4. बाल विवाह नियंत्रण अधिनियम (शारदा एक्ट) कब पारित हुआ?
5. भारत के संविधान के किस संशोधन में महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण प्राप्त हुआ?
6. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (IV) के अनुसार किस राज्य की महिलाओं के पास सर्वाधिक स्वयं का बैंक खाता है?
7. राज्य की महिला साक्षरता दर वर्तमान में कितनी है?
8. 'श्री सावित्री कन्या पाठशाला' की स्थापना कब और कहाँ हुई?
1. 'राजस्थान महिला विद्यालय' की स्थापना किसने की थी?
10. भारतीय संविधान के अनुसार किस आयु के बच्चे बालश्रमिक माने जाते हैं?
11. बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम किस सन् में लागू हुआ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. अथर्ववेद में नारी की प्रस्थिति की विवेचना जिन शब्दों में की गयी है, लिखें।
2. प्रथम भक्ति आंदोलन का आरम्भ किसने और कब किया?
3. प्रमुख स्त्री संगठनों के नाम लिखें।
4. दसवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिए क्या प्रावधान प्रमुख था?
5. राजस्थान में विधवा दहन को तत्कालीन किन-किन राज्यों ने गैरकानूनी घोषित किया था?
6. किस राजा ने, कहाँ और किनसे बेटियों का वध न करने की शपथ दिलवाई?
7. महिला मताधिकार की माँग भारत में कब और किस समय स्वीकार की गई?
8. राजस्थान में आरम्भिक दो बालिका विद्यालय कहाँ और कब खोले गए?
9. मुख्यमंत्री उच्च शिक्षा छात्रवृत्ति योजना क्या है?
10. बालश्रम के प्रमुख सिद्धान्तों के नाम लिखें।
11. सर्वप्रथम बालश्रम की समस्या हेतु कब और कौन सी समिति गठित हुई?
12. कारखाना एक्ट, 1948 क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करें।
2. राजस्थान की महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु क्या-क्या प्रयास

हुए?

3. सामाजिक चेतना से आप क्या समझते हैं? क्या भारत की महिलाएँ अपनेर ाजनैतिकए वंस ामाजिकअ धिकारोंके प्रतिज ागृतह ैं? उदाहरण सहित लिखें।
4. राजस्थान में बालिका शिक्षा के लिए कौन-कौनसी योजनाएँ हैं? विस्तार से लिखें।
5. स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान में बालिका शिक्षा की स्थिति के बारे में लिखें।
6. बालश्रम के कारण एवं दुष्प्रभावों की चर्चा करें।

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (द) 3. (अ) 4. (अ) 5. (ब)
6. (ब) 7. (ब)।